# राजनीति धर्म

ॐ

परमार्थ ज्ञानसंवाद

# राजनीति धर्म

अर्थात्

जगत ज्ञानका सारबोध रहस्य और सत्य ज्ञानस्वरूपका
देखनेलायक निष्पक्ष संभाषण

जन्म मरणरूप दुःखसे छूटनेका सर्व जिज्ञासु
जनको सुलभ मार्ग

एक कबीरपंथी साधु काशीदासजीने केवल
सद्गुरु कृपासे रचना किया

दो०—"पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय।
ओछेसे नेह लगायके, भूलहु आवै खोय॥"

संस्करण- सन् २००० सम्वत् २०५६

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

मूल्य ३० रुपये मात्र

# भूमिका

आजकल इस जगतमें ज्ञानका शौक कोई सज्जन लोग रखते हैं। ज्ञानग्रंथभी बहुत बने हैं, परंतु उनोंमें रोचक भयानक आदिक वाणी विशेष फैला दी गई, ऐसा देखनेमें आया। इसी निमित्त यथार्थ ज्ञान संवाद बोधदर्शक और रोचक, रसिक, भयानक आदिक सब मत मतांतरोंका थोडा थोडा सार रहस्य निकाल, मनुष्यका शुद्ध ज्ञानधर्म और मुक्तिका मार्ग साधारण मनुष्यको समझने लायक सुलभ भाषामें दक्षिणके केवल नाटक खेलवत् वर्णन किया है। जिसमें सबको अपने अपने अंतःकरण निर्मलताई प्रमाण चलनेकी रीति अथवा सुगम मार्ग हो जावेगा, इसमें १ स्त्री विषय निषेध और यथार्थ विषय मंडन, २ मद्य मांस खंडन और सत्य अहिंसा निरूपण, ३ कर्म मार्ग, ४ उपासना और भक्तिमार्ग, ५ योगमार्ग, ६ ब्रह्मज्ञान प्रकरण ७ सत्यज्ञान रहनी और जीवन-मुक्त स्थिति, ऐसे सात तरंग रचे हैं। ये पुस्तक परिश्रमसें मुख्य सद्गुरु कृपा सहायता, संतोंका बोध, कई ग्रंथोंके आधार और मेरी अल्प बुद्धि अनुसार ये छोटासा ग्रंथ, मैंने ज्ञानी, पंडित, शास्त्री, साधु, सन्त आदिक कीर्तिवान महात्माओंके, आगे धरनेका साहस

किया है इसीको आदिसे अंततक पूर्ण विचार करके कोई पढे तब सार समझनेमें आवेगा। याते इसी अंदर सब अवगुण, दोष, निंदा, अक्षरोंकी अशुद्धतासे आदिक दयाकरके क्षमाकर केवल सत्यन्या-यहीके ओर सूक्ष्म दृष्टि दे मुझको निभाय लेना, ऐसी सबको दीनतासे बिनती पूर्वक मैं प्रार्थना करताहूं। क्योंकि, कोई सज्जनोंने हठसे पक्ष पकडना नहीं। जन्म मरण छूटनेमें सुवर्णकी नाई कसौटी-पर लगाय, सार ग्रहणकर, अपना कार्य साधना है। पृथ्वीके सब पत्थर हीरा तो नहीं होते, तैसा हीरावत् शुद्ध सारभाग ग्रहणकर ले लेना और मैं ज्यादा क्या कहूं, आप संतलोग सब जानतेही हो केवल एक सूचना दी गई है।

सब सज्जनोंका सेवक—

काशीदास,

एक कबीरपंथी साधु.

---

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M / s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Mumbai 400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

# सूचीपत्र


| विषय. | पृष्ठसे पृष्ठतक |
| --- | --- |
| उपोद्घात–( ग्रंथका विषयहेतु ) .... | १–५ |
| तरंग पहिला–( स्त्री विषय निषेध और यथार्थ विषय मंडन ) .... .... | ५–२२ |
| तरंग दूसरा– ( मद्य मांस खण्डन और सत्य ( अहिंसा निरूपण ) .... .... | २२–४५ |
| तरंग तीसरा– ( कर्ममार्ग ) .... .... | ४६–६९ |
| तरंग चौथा– ( उपासना और भक्तिमार्ग ) .... | ६९–१०३ |
| तरंग पांचवां–( योगमार्ग ) .... | १०४–१३२ |
| तरंग छठवां–( ब्रह्मज्ञान प्रकरण .... | १३२–१६४ |
| तरंग सातवां–( सत्यज्ञान रहनी और जीवन्मुक्त स्थिति ) .... | १६५–२२० |


इति

—

सद्गुरवे नमः

# परमार्थज्ञानसंवाद

# राजनीति धर्मग्रंथ प्रारंभ

## उपोद्घात

### ग्रंथका विषय हेतु

प्रारम्भमें दो भाट और एक ब्राह्मण चित्रपट खोल निकल पडे और सद्गुरुकी स्तुति गाने लगे।

शब्द

भक्तप्रिय दयाल प्रभु दीना, सद्गुरु तुम बोध दाता हो।
बुद्धि प्रकाश करो मेरे साहेब, बारंबार सब वंदत हौ ॥ टेक ॥
दयासागर निरहंकारो, छेदत हौ भ्रम माया हो।
जन्म मरणका रोग नसावै, गुरुपद सेवा जो पाया हो ॥ १ ॥
स्वयंप्रकाशी सब सुखराशी, ज्ञानामृत करो बरखा हो।
ज्ञानप्रकाश मिलै जब जीवको, जीवनपद तब परखा हो ॥ २ ॥
काशीदास है मूढमति बालक, कहूं कछु ज्ञानके भेवा हो।
हृदय विराजके स्फूर्ति देना, कृपासिंधु गुरुदेवा हो ॥ ३ ॥

ऐसी स्तुति कहकर वह चित्रपटके अन्दर चले गये।

इतनेमें विदूषक आया।

विदूषक बोलाः-हां हां, कितना बड़ा आश्चर्य है ! मानो आज इंद्रसभाही देख चुके । कैसे कैसे बडे बडे न्यायाधीश, शास्त्री, पुराणीक, पंडित, साधु आदिक महात्मा आय आय, अपने स्थानपर शांत चित्त हो बैठे हैं । परन्तु क्यों जी, इसीमें जिसको मनुष्य कहते हैं सो कौन होगा भला ? ऐसा न हो, बहुतही दो शींग और पूँछबिन पशु निकल आवें ! कहीं प्रकाश होगा कि, धुंध अन्धेराही अन्धेरा !

इतनेमें एक विप्र आये.

विप्र बोलेः-वाहजी वाह, विदूषक महाराज ! कैसे तुम पागल भकवा बन बोल रहे हो ! अच्छी निगाह करके देखो । शराबकी नशा तो न चढी होगी! प्रकाश देख आंखी मीच लिये हों क्या ? अरे भैया, ये सब मनुष्यही तो हैं, हकनाहक पशु क्यो बनाता है भला ? परन्तु एक रीतिसे तेरा पशु कहना भी शोभा देता है । क्योंकि, तूं ठहरा बन्दरचेष्टा करनेवाला पशु इसीसे जरूर तेरेको सब बन्दर पशुही भाषते होंगे ।

इतनेमें एक पंडित आये ।

पंडित बोलेः-विप्रजी चूप रहो, बहुत बकवाद क्यों करते हो कुछ शास्त्र पढे हो ? बाले भोले अज्ञानी लोगोंको कोई जडकर्म हढाय, केवल पैसा जोरनेपरही लक्ष है ? सुनो, शास्त्रका प्रमाण ।

श्लोक-"आहारनिद्राभयमैथुनानि, सामान्यमेत
त्पशुभिर्नराणाम् ॥ ज्ञानं नराणामधिको
विशेषो, ज्ञानेन हीनाःपशुभिः समानाः"॥

अर्थ ऐसा है, भोजन, निद्रा, भय, मैथुन, आच्छादन और मोह, ये षट्धर्म पशु पंछी, चींटी और मनुष्य आदिक सब प्रानीमें एकसे हैं। परन्तु ज्ञान शक्ति मनुष्यमें विशेष है इसीसे नाममात्र मनुष्य और आसक्त पशुवत् षट्धर्मोंमें, तो उन्हींको पढंत मूर्ख अथवा पशु कहेते क्या विकार देख पडा ?

विप्र बोलेः- देखो पंडित महाराज, हम नित्य, नैमित्तिक कर्म और उपासना, वेदके आज्ञा प्रमाण आचरण करते हैं, तो भी हमको कुछ ज्ञान नहीं, ऐसा आप समझते हो क्या ?

पंडित बोलेः--सुनो विप्रजी, नित्य नैमित्तिक कर्म और उपासना आचारादिक सब तुम्हारे ब्राह्मण कुलका धर्म ही है, जो न करोगे तो पाप जरूर होगा। परन्तु जगत्में आदरमान मिलना, बडाई होना, पुत्र दारादिक कुटुंबका उदरपोषण होना ऐसी अन्दरकी अभिलाषा कहां छूटी है ? ऐसे पेट चतुराईके धन्दासे सबही लोग कुशल हैं इसीमें विशेषता क्या और कौनसा ज्ञान ठहरा ! देखो, तुलसीदासजी कहे हैंः —

चौपाई-"हरें शिष्य धन शोक न हरहीं ॥
सो गुरु घोर नर्कमह परहीं ॥

आपुहि गये अरु आनहि घालहिं ॥
उदर भरै सोइ करम सिखावहिं" ॥

रामायण उत्तरकांड

सारांश--जो गुरु उदरनिमित्त बोध दे, केवल शिष्यका धनही हरण करता है, और जन्म मरण, दुःख शोकसे नहीं छुडाता, सो गुरु और शिष्य भी दोनों घोर नर्कमें पडेंगे "हाथमें चांदी दी और निकला रांगा" ऐसा भी कहीं न्याय होता है ! आशा-पाश छुडावनेका ज्ञान वतावना तो बिस्वा बीस पक्का !

विप्र बोलेः--वाह पंडित महाराज ! ये आपका बोलना कैसा हुआ कि, 'कुल्हाडीका डंडा और जात जंगलको काल' आशा डोरीमें बन्धे हुये तुम हम एक मालाके मणी तो हैं फिर दूसरेको नाहक करेजामें शब्दवाण मारनेसे क्या फायदा निकला सो कहो तो सही ?

पंडित बोलेः -सुनो विप्रजी, तुम्हारा कहना रंचक भी झूठ नहीं है । परंतु हटसे पक्ष पकड गोलमोल न्याय नेत्र मूंदके करना हम चाहतेही नहीं । आपनी माता व्यभिचार कर्ममें फँस गई तो व्यभिचारनीही कहना पडेगा । राजा बरबस आपने प्रजाको मारने कुटने लगा तो वह राजा भी अन्यायी कहना होगा । अथवा पंडित, शास्त्री या कोई भी ज्ञानी पक्षपातसे खैंचाखैंची न्याय करेगा, सो सब अन्यायी नहीं तो कौन ? बाल बराबर कसर न

रहै, सोई सत्य पूरा ज्ञान है, वही सर्वके ऊपर केवल माथेका मुकुटही जानो। नहीं तो ' आपना बेटा बाबू और पराया शठ ' ऐसा भी कहीं न्याय सुना है!

विदूषक बोलाः--अच्छी मौज भई, देखो इनका न्याय और मन खुसियाली धर्म।

इतना विदूषक बोले बाद सब चले गये और चित्रपट गिराया।

## तरंग पहिला.

( स्त्री विषय निषेध और यथार्थ विषय मंडन )

प्रारंभमें विदूषक चित्रपट खोल बाहर निकल आया।

विदूषक बोलाः--पंडित और विप्र आपसमें चटपटाते चले गये।

इतनेमें तीन स्त्रियां आईं। वेश्या, कुलीन स्त्री और पतिव्रता।

वेश्या बोलीः--सुनो सखी, अच्छी निगाह करके देखोगी। तो, विषयक्रीडाकी नाईं और सुख त्रिभुवनमें है ही नहीं। देखो, हमारे यहां क्या ठाट जुडता है? कांचकी हंडिया और झुमकामें प्रकाशित की हुई रोशनाईके झार, राजा और देवोंकी टंगी हुई तसवीर सुबक गुलजार, पलंग, बिछौना, तकिया, गालीचा आदि बहार, सुगंधी फुलेल, उबटन और भांति भांति फूलोंके हार, नाना वस्त्र आभूषण आदिक सिंगार, पानसुपारी नाना फल और मेवा मिष्टान्नका फरहार, दास दासी आदिक घरमें रखवार और सुंदर नव जोवन पुरुषोंका भोगविलास मानो इंद्रभुवनका करभार;

देखो हमहीं जगतमें बडी भाग्यवान धन्य हैं। ऐसा मनभावन, ख्याली खुसियालीका रागरंग और विषयानंद सुख, तुम घरगृहस्थी स्त्रियां और पतिव्रता इनके प्रारब्धमें लिखाही नहीं, तो मिलेगा कहांसे ?

कुलीन स्त्री बोली:--महामलीन सुखकी बडी तारीफ कर रिझावनेमें कुछ तेरेको शरम नहीं लगती ? जैसी कुत्ती, गद्धी और बकरीके पीछे पीछे बहुतेरे कुत्ते गद्धे और बकरे विषयकामनाके मारे तलफलाय दौड दौड चले जाते हैं, वही हाल सब वेश्योंका है। पशु ऋतु अवसर देख, विषयासक्त हो गमन करते हैं। परन्तु सब विषयी, रंगीले, रसीले, बेशरम पुरुष रोजही ऋतु थाप, विषयमदांध हो, घरकी सुन्दर अच्छी पवित्र स्त्री छोड जूंठी, खराब, बेढंगी रंडियोंके फंदमें फँसके घरकी सब संपत्ति बिगाड देते हैं। अंतमें वेश्याने सब धन छीनकर लूट लिये बाद, स्त्री पुत्र और आपन भी घर घर भीख मांगने लगते हैं! जल जाय ऐसे पुरुषोंके संसार ! धिक्कार है ऐसे कर्मको ! पुरुषार्थ सबही खोय भडुवे बन जाते हैं ! धन नहीं वस्त्र नहीं शरीरमें ताकत नहीं सब भांति निःकामी नारही बने ! ऐसे संसारमें स्त्री, पुत्र और कंथको जरा तो भी सुख है क्या ? तेरे समान जो काले मुहेकी वेश्या जगतमें न रहती, तो सबका संसार क्या उत्तम राहसे चलता। विवाहमें कहते हैं—

"धर्मे च अर्थे च कामे च नातिचरामि"

कहिये मैं धर्मपत्नीको धर्म, धन और विषयभोग तृप्त करनेमें अंतर न देऊंगा, ऐसी विवाहमें चार लोगोंके सामने दुहांई लेकर, आखिर कैसा मेहरीका गला काटनेको सिद्ध होते हैं ! पुरुषोंको बहुत स्त्रियोंसे विवाह और व्यभिचार भी करनेको कुछ मनाई है नहीं । और स्त्रीका जरासाभी टेढो पांव खोटे कर्ममें पडा तो, तरवार निकार, शिर उडावनेको तय्यार हो जाते हैं । धिकार है ऐसे अबलाके परवस जीनेको !

पतिव्रता बोली:--देखो सखी, तुम दोनों बोल चुकीं परन्तु मेरेको जरासा भी अच्छा न लगा । क्योंकि, स्त्रीको इष्ट देवता उसका पतिही है । इसीलिये तन, मन, धन सब पतिको अर्पण कर, एकनिष्ठ भावसे उनके आज्ञा प्रमाण सेवाही करना योग्य है । कुष्ठ, नपुंसक, अंधा, लूला, लंगडा कैसा भी अपना स्वामी होय, उनके दुर्गुण तरफ देखनाही नहीं । अहिल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मंदोदरी आदिक पतिव्रता स्त्रियां जगमान्य हो गई । पति-सेवा करनेसेही अपनेको मुक्ति मिलती है । और वही सेवासे हमको तीन लोकमें श्रेष्ठ माने हैं । मनुष्यजन्म कहीं बारबार आता है ? व्यभिचार कर्म करनेवाली वेश्या और कुलीन स्त्रियां सबको महान घोर नर्कयातनाका दुःख भोगना पडता है ऐसा पुराणोंसे सुना है कि, यमदूत लोहा तपाय व्यभिचारी

स्त्रियोंके भगमें चलाते हैं,बडा भारी दुःख सहन करना पडता है। इसीसे अंगार लगे ऐसे व्यभिचार ऐसे कर्मको !

वेश्या बोली:--क्यौं सखी, तुम दोनोंने हम वेश्याओंकी निंदा-ही करना प्रारंभ किया, परन्तु स्वर्गलोकमें भी इंद्रादिक देवता, रंभा,उर्वशी,तिलोत्तमा,मेनका आदिक अप्सराओंके साथ विषयाविलास करतेही रहते हैं, वह देवतोंसेभी तुमको विशेष ज्ञान हुवा जानना क्यों ? बडे बडे राजा, कृष्ण, जनक, दशरथ आदि ले बहुत स्त्रियोंसे विवाह कर, विषयरस लेतेही रहे। वो भी सब मूर्खही जानना क्यों? हमारा वेश्योंका नाचना वजावना आदिक अनादि कालसे चलेही आता है, सो कहीं टूटभी जाय सकता है ! संसार कहिये मायाका नाम स्त्रियोंका खेल, उसे तुमने तिरस्कार जो भी किया तो बंद थोराही होता है ! अपने अपने रोटीपर घी खैंचनेवालीं अच्छी स्त्रियांही तुमको जानना क्यों ?

कुलीन स्त्री बोली:—सुनो कसबन, तेरा कहना मेरेको थोरासा सचाही दीखता है। काहेते कि, हम कुलीन स्त्रियोंको विषयजालमें फँसाकर, तुमारे सरीखी विषयकी विशेष चाट लगानेवाले सगरे व्यभिचारी पुरुषही कारण हैं। स्त्रियोंके तरफ जरासाभी कसूर नहीं देख पडता। 'उथल पानी जोर जोरसे शब्दकर बहता है' इसी कारणसे पुरुष सब उल्लू बन, स्त्रियोंके पास विषयकामनाकी विशेष इच्छाके मारे चले आवते हैं। यद्यपि स्थिर और गंभीर

नदीके पानीमाफिक हम हैं, तथापि पुरुषरूप पवन चलनेसे ये नदीरूप स्त्रियोंपर बडी विषयलहर उछल आती है। और व्यभि- चारादिक कर्ममें लपट झपट, अन्तमें सुजाक, परमा इत्यादि रोग- व्याधिसे स्त्री और पुरुष दोनोंकी नसीहत और बडी फजीहत होने- को सकल दुष्ट पापी पुरुषही कारण जानो। देखो, पु कहिये रक्त, मास, मल, मूत्र, चर्मादिक मलीन पदार्थ और पुरुष कहिये झाडरूप अन्य स्त्रियोंका देह, उसीमें रते और लपटे हुये पुरुष प्रत्यक्ष कीडारूपही बनते हैं ऐसा यथार्थ कहनेको किसीका डर है क्या ? मुख्य सुलक्षण पुरुषविना हमारा संसार व्यर्थ है नहीं सखी ! ‘ चना है पर दांत नहीं और दांत है पर चना नहीं ’ इसी प्रकार कैसे चलेगा ? दोनोंका एक भाव और सुचाल रहे बिना ये संसार रहटा सीधा चलनेकी आशा तो भी है ?

पतिव्रता बोली:— कैसे ये तेरे बोल जैसे करुवा वृन्दावन फलके तोल ! देखो, पुरुष एकप्रकार ब्रह्मचर्य व्रतसे रह सकते हैं परन्तु वैसा स्त्रियोंका है ही नहीं। स्त्रियोंको संसार और परमार्थ दोनों पूरा होनेके लिये विवाह कर, पतिके आज्ञामेंही रहना धर्म- नीति है। पुराणोंमें ऐसा सुना जाता है कि, स्त्री व्यभिचारी निक- लती तो, सर्व प्रकारसे अपने कुलको कलंक लगाय, पतिको ले, ब्यालिस कुल नरकमें डार देती है। स्त्रियोंकी जात प्रथम मूर्खही कर जानो। उनकी सयानी जो कुछ है सो चूल्हेके पास रसोई

बनावनेकी । परन्तु 'शरमकी बांधी लोकरी फिरे भेडियन साथ' इसी प्रकार पुरुषोंके विषय मूल बातोंमें धोखासे सहजहो फँसफे, अहिल्या, वृंदा एंसी पतिव्रता स्त्रियां धूरमें मिलीं, तो हम सरीखीको कहां ठिकाणा है ।

इतनेमें एक ब्रह्मचारी और शास्त्री बाबा आये.

ब्रह्मचारी बोले:—देखो मैया जी, तुमारी सब बारता हम दूरसे सुन लीं । परन्तु सच्चा ब्रह्मचारी कोई बिरलाही निकल आवेगा । अग्निके पास रक्खा हुआ घी पिगल जावेहीगा । और लोहचुंबक पत्थर लोहाको आपने तरफ खैंचेहीगा । वोही गति अन्तमें हमारी है । तरुण यौवन अवस्थामें कितनेक ब्रह्मचर्यव्रतधारी चकचकाय गये । साठ हजार बरिस लोहचना खाके विश्वामित्रने बडा तप किया, परन्तु इंद्रकी अप्सरा मेनका उनका तपभंग कर सत्त डिगाय, उनको कुत्तेमाफिक इन्द्रलोकमें ले गई । बडे योगी त्रिकाल ज्ञानी महादेव, जिनको कामारि कहते हैं, परन्तु भस्मासुर मारने समय विष्णु भगवानका मोहिनीरूप देख, विषयासक्त बाउर बन, काम खलित हुवा । देखो कितनी शरमकी बात है ! हम बाहरते मैथुन भोग छोडा है ये हकीकतमें सच है । और यद्यपि हम पूर्ण जानते हैं कि, स्त्री केवल अग्निसमान, विषरूप, सर्पिनी, बाघिनी, डांकिनी और हाड चामकी पूतरी बनी है । तैसेही स्त्रीके स्थूल कहिये शारीरिक विषय प्रसंगसे ज्ञान, क्रिया,

वल, वीर्य, लाज, यश, लछिमी, कीर्ति, तप और मुक्तिका सकल समाज नाश होता है। तथापि अन्तरमें मानसिक अष्ट मैथुन, दर्शन, स्पर्शन, संकल्प विकल्पादि वासनात्मक आसक्ति बनीही है जानो। पुराणोंके आधारसे देखना तो, हनुमान, कार्तिकस्वामी, भीष्म पितामह और शुक्राचार्य ये चार पूरे ब्रह्मचारी भये हैं। परन्तु उसीमें विशेष महत्वं शुक्राचार्यहीका है। क्यौं कि, रंभास-रीखी अप्सरा आयकर, नाना प्रकार हाव भाव, कटाक्ष, शृंगार, गायनादि देखाय रहीथी, तौ भी उनकी वृत्ति चलित न हुई। अन्तमें उसीने यौं कहा, मेरा शरीर कुछ मलमूत्रामिक दुर्गंधका नहीं। और पेट चीरके अन्दर सुगन्ध, अर्गजा, कस्तूरी आदिक बताया। तब शुक्रदेवजी बोले हे माता, हम पहिलेही ऐसा जानते तो अपने माके पेट अवतार ले बारह बरस मलमूत्रादिक दुर्गंध और जठराग्निकी आंच कभी न सहते, हे मैया ! तेरेही कोखीमें जन्मलेते ! इतना वचन सुनतेही वह इन्द्रकी अप्सरा रंभा लज्जित हो स्वर्गलोकको चली सई। धन्य वह महाराज शुक्रस्वामी ! ऐसेही ब्रह्मचारी पूरे ज्ञानी ! क्या करते हो हमसरीखे ढोंगी, पोल ब्रह्म-चारियोंको !

शास्त्रीबाबा बोलेः—ब्रह्मचारी महाराज, कैसी न्यायकी बात आपने निःपक्षपातसे कही। वाहजी वाह जो अपने गुण और दोष बाहर निकाल अलगही धर देता है, वही सत्पुरुष जानना

तप और मुक्तिका सकल समाज नाश होता है । तथापि अंतरमें चाहिये देखो महाराज, और एक विशेष न्यायकी बात सुनो थे स्त्रीका स्वामी किसनजी साहूकार आपने देखाही होगा ?

ब्रह्मचारी बोले:-हां हां बडा विलक्षण रंडीबाज वोही तो न होगा ?

शास्त्रीबाबा बोले:-हां वोही तो है । देखो, वह किसनजी साहूकार सब कामधंदामें बडा चतुर था । ये हरिभोग शहरमें सबको जाहिर और सबके दिलपर उसका वजन पडे ऐसा वही एक पुरुष था । उसीको दो स्त्रियां हैं । एकके दो पुत्र और एक कन्या और दूसरीका एक पुत्र और एक कन्या, इतनी संतति रहतेभी दो रंडियां और रखेली हैं हा । रंडीबाजी में बाबूजी पूरे प्रवीण, बडे शूर !

ब्रह्मचारी बोले:--उनके बारेमें हमभी कितनीही बात सुन बैठे हैं । घरमें नाना भांति स्त्रियोंने पांव पकर समुझावणा की देखो महाराज आज पचास पचपन बरसकी तुमारी उमर भई अब तो भी ये रंडीबाजीका शौक छोड देव । परंतु उस शहरमें किनेनक अच्छे कुलकी स्त्रियां तो उसीने बिगाड डारीं । चमार, पासी, बसोड, भंगी आदिक नीच जातकी स्त्रियांभी उसने गुप्तरीतिसे भोगे बिना नहीं छोडीं । कितनेक बेर तो कहीं जूतियां खा खा शरीरके चमडे भी निकल आये । ऐसा खोटा बदकर्म

अब नहीं करूँगा, ऐसी उस समय स्त्रियोंकी दुहाई ले लेना, फिर बेफाम कुचेमाफिक वह नीच कर्म चलाही जाता है । कितनेक वेरं कैदमें जा जा सख्तमजूरीकी शिक्षा भोग बैठे हैं । एक समय कोईने बहुत तपाया गरम जल उनके अंगपर डालेसे बडे बड़े फोडे पड गये थे । एक दिन शहरमें राजा नहीं है ऐसा देख, बाबूजी घुसगये राजाके बाडेमें उतनेमें राजाभी बाहरसे आगये उपरांत वह संडासमें गये जहां सब झाडा फिरते हैं । और अंदर नर्कके टोकरीपास छिप बैठे । फिर थोडे देरमें राजा दिशा जंगल वहांही गये, तब नर्क मूत्र सब उसके अंगपर खसा उसबाद वह बाहर निकलने न पाया, सबब सब रात वहांही रहना पडा । दूसरे दिन सबेरे आठ बजे भंगी वहां जगा सफा करने आया तब, उसको बहुत द्रव्य देना कबुलाय बडी मिन्नतवारी की तब उसने नर्कके गाडीमें डाल, मुंह खूलारख, एक टोकरी मुंहपर ढांक शहरके बाहर बडी दूर ले जाय, एक नदीपर छोड दिया । महान नर्कवास कहते हैं सो जीतेही देख लेव. जितने दुर्गुण वह साहूकारके वर्णन करना उतने थोडेही कर जानो ।

शास्त्रीबाबा बोलेः--ब्रह्मचारी जी वह सब बातैं रहीं, परन्तु हालकी स्थिति सुनो । रंडीबाजीमें सब धन उठ गया । अब कोई साहूकार, पत न रहनेसे कर्जाभी नहीं देते । बहुत क्या कहैं रोज खानेकी विपत्ति आय पडी है । ये भी रहा, परंतु अब सडी रांडके

प्रसंगसे परमा सुजाक, सब अंगपर फोडे, ऐसी बडी दुर्धर गरमीके मारे हाथमें नीमकी डार ले, हिलाते हिलाते बाबूजी घरमें सोते पडे हैं। स्त्री पुत्रादिक सबने उनके नजीक जानाही छोड दिया। वैदभी हार बैठे। घोडा गाडियां, हाथी. उंट, घोडे, नौकर आदिक पहिला सब ऐश्वर्य जाता रहा। सर्व अंगकी दुर्गंधी सडे हुये मुरदे माफक फैली है। अंगमें किरवा परगये। अन्न जलभी छूट गया उसीमें सड सड पचपचके थोडेही दिनमें उनका प्राण जावेगा। शिव शिव! कैसी ये भयंकर स्थिति है। येही घोर नर्कवास अथवा यमदंडका महान दुःख जानो। देखो महाराज, ये विषय फंदेमें फँसके ऐसे कई रोग ग्रसित हो मर मर गयें हैं। माता, बहु, बेटी बहिन, सास आदिक सगे नातेके स्त्रियोंसे खोटे व्यभिचार कर्म कई लोगोंने किये हैं। विषयमदांध हो, कोई जहर दिवायके कई स्त्रियोंको मरवाये हैं। ऐसे अनेक नीच अधम कर्म इस विषय छंदसे होगये हैं। कैसी परमप्यारी स्त्री विषयकी फांसी है बडी जबर!

ब्रह्मचारी बोलेः--शास्त्रीबाबाजी, ये प्रापंचिक लोगोंका तो रहने देव। परंतु बैराग लेके साधु, गुरु बने हुए, संन्यासी बडे बडे जटाधारी. तपस्वी, आदिक कितनेक साधुभी स्त्री विषयमें बौराय गये। कोई साधु घर गृहस्थी स्त्रियोंके साथ बदकर्म करनेसे उनको पकड, अच्छी मारपीट कर, घरके बाहर निकाले गये हैं। कोई

साधु फिरभी विवाह कर, अथवा कोई सुंदर स्त्री घरमें या बाहर रख, चाम कूटतेही बैठे है। नाम पवित्र साधु और वासना जीतेही नर्क भोगनेकी, देखो क्या अद्भुत ख्याल है? बडे बडे शूर वीर राजे रावण दुर्योधन, दशरथ, पांडु, अर्जुन, कीचक आदिक विषयवासना वस वैर विरोध कर मरगये। स्वर्गवासी सकल देवतोंको राजा इंद्रभी वहांकी सुंदर अप्सरा छोड, साधारण मृत्युलोककी गौतम स्त्री अहिल्याके फंदेमें फँसके सब अंगको भग पर गये। चंद्रको गुरु पत्नि संभोगसे कलंक लगा। महादेवका लिंग स्त्रियोंके अभिलाषासेही गल गया। इतने बडे विष्णु भगवान् परन्तु जालंधर राक्षसकी स्त्री वृंदासें छल कपट करे पाषाण शीला सालीग्राम भये ब्रह्मा अपनी बेटी सरस्वतीके पास खोटे कर्म करनेको लजाये नहीं। त्रिलोकमें गमन करनेवाले विवेकी जितेंद्रिय नारदकी विषयवासनासे नारदी वन, साठ पुत्र जने। ऐसे साधु, राजा, देवतादिक सब विषय फन्दमें फँसके अनेक छल प्रपंच कर चुके हैं तो साधारण जीवोंकी कौन गिनती?

शास्त्रीबाबा बोलेः ब्रह्मचारीजी, आपने यथार्थ न्यायकी बात कही। अब तुम ऐसा समझ लेव कि, जो माता, बेटी, बहिन, सास और अपनी व्याही स्त्री-मेहरी ये पांचों एकही पांतीसे खडी कर दिई। और केवल देहपर निगाह किये तो सब एकसीही हैं

और देखो सब माताके भगद्वारेसे पुत्ररूप धर बाहर आये हैं। वही नर्करूप भगद्वार युवा अवस्थामें पुरुष कहाय, कोई एक मातारूप स्त्रीसे विवाह कर भोगना, ये कितना नादान कर्म है भला ! मानो मनुष्यको पशुकी चाल सिखावना है। इसीपर एक साधुने कहा है:—

दोहा—"माता सो मेहरी भई, पुत्र भयो सो कंत।
एकै राह दूनो भये, तुम सुनो विवेकी संत"॥

इसीवास्ते वेदकी मुख्य यह आज्ञा है कि, सबोंने बाल ब्रह्मचारी रहिके गुरुसेवासे ज्ञानप्राप्ति कर लेना, ये सबसे उत्तम मार्ग है। परन्तु ऐसा कोई विरलाही निकल पडेगा। क्योंकि, अनादिकालसे ये बडी बिकट विषयलालसा लगतीही चली आई है। और युवा अवस्थामें विषयमद अनिवार्य हो जावेगा। ताते वेदने फिर ऐसी आज्ञा दिई कि, देवता, कुलगुरु और अपने सबही नातभाइयोंको साक्षी रखके तुम विवाह करो। ऐसा धर्म बताय, बाहरके वेश्यामाफक निधडक एक पराई स्त्री लायके घरमें घुसाय दिई। और कहा कि ये स्त्री तेरी मेहरारू भई, इसी लिये अब जगतकी सब स्त्रियां मातारूप जानके, इसी स्त्रीके पास अपनी कामवासना तृप्ति कर ले। ता उपरांत आगे ऐसा कहा कि, देख भैया, घरकी हो चाहे बाहरकी हो, दोनों अग्नि जलावनेमें एकसे रहते हैं, ऐसेही अपनी स्त्रीको चीन्ह। और विषय कर्ममें संभारके

रहना; नहीं तो वीर्य नष्ट हो, शरीरकी खराबी हो जायगी। आखिर अति विषय प्रसंगसे क्षयरोग लगके मर जानेकी भी दहशत है। अनन्तर फिर ऐसा कहा कि. स्त्रीको ऋतुप्राप्ति कहिये हर-महीनामें रजस्वला होनेबाद सोरह दिनके अन्दर पुत्र उत्पत्तिके निमित्त स्त्रीसंभोग करना। परन्तु पहिले चार दिन, व्यतिपात, पर्व, अमावस, पूर्णिमा, व्रतदिन. श्राद्धदिन और सब कुयोग. दिनका समय और रातका पहिला प्रहर छोड़, जब तुम दोनों अच्छे रोग रहित होवोगे तब स्त्रीसंभोग करना। इस राहसे गृहस्थाश्रम कर, एक पुत्र उत्पत्ति हुये बाद कंत स्त्रीके ऋणसे उरिन होता है। क्यों कि, कहे हैं:--

"आत्मा वै पुत्र नामासि" इति श्रुतिः। श्लोक-
"पतिर्भार्यांसंप्रविश्य, गर्भो भूत्वेहजायते ॥ एतद्धि जायाजायात्वं. यदस्या जायते पुनः" ॥

मनुस्मृति। अध्याय ९ श्लोक ८ ॥

श्लोक—"आत्मत्वेनैवजनितः, पुत्र इत्युच्यतेबुधैः। तस्माद्भार्यांनरः पश्येत् मातृवत्, पुत्रमातरम्"

यह भागवत प्रमाण।

भावार्थ ये है कि. स्वतः पतिही अपनी स्त्रीके पेटमें पुत्ररूप धरके जन्म लेता है। इस वास्ते अब स्त्री नाता टूटके वह स्त्री माता-

समान होगई । उपरांत वानप्रस्थ आश्रम घरमें अथवा वनमें जाकर आचरना । एक सेज स्त्री और पुरुषकी रख दोनोंके बीच तरवार वा कटचारी साख धर, बारह बरसलों पुरुषने अपना मन विषयकामनासे पूरा जीतकर अचल होना । उपरांत संन्यास ग्रहण करके आत्मज्ञानमें स्थितिकर मुक्त होना थे मध्यम पक्ष है । जो एक पुत्र होनेबाद भी काम वासना नहीं जीत पाया, तो नित्य सत्संग और सत् विचार चलाते रहना । फिर दो चार बेटाबेटियां भये बाद अथवा चालीस बरस उमर होनेबाद, अपनी स्त्रीको माता लेख ज्ञानप्राप्ति कर लेना । और किसीको संतति ही न होती होय तो उसने दश बरस विषय वासनासे अपनी इंद्रिय तृप्ति कर लेना उपरांत अपनी स्त्रीको मातारूप जान ज्ञानद्वारा मुक्त होना, ये कनिष्ठ पक्ष है । सुनो निश्चलदासजी कहे हैं:—

चौपाई—"जो जो नर नार नयन शर बींधे ॥
तिनके हिये होत नहिं सीधे" ॥

विचारसागर पंचमतरंग ।

इसीसे स्त्री विषय विष उतरना बडा कठिन है । स्त्री स्मरण होतेही वह विष शरीरमें रोम रोम भीन जाता है । अथवा एक-पत्निव्रत चोला बनारहे तक रखना, ये उससेभी कनिष्ठ पक्ष है । और एक स्त्री रहिके अन्य स्त्रियोंसे विवाह करना अथवा अन्य वेश्योंके संगत रत होना, ये महा कनिष्ठ पक्ष है । जानो जीतेही

नर्कवास भोग अथवा कुत्ता, सूकर, बकरा, गिधा आदिक महा-नीच पशुही समझ लेव । प्रमाण सुनोः—

चौपाई—" नारि बुरी वेश्या अरु परकी ।
तीजी नरक निशानी घरकी "

विचारसागर पंचमतरंग ।

छन्द—" सुन्दर कहत नारी नरकको कुण्ड यह नर-
कमें जाइ परे सोई नरकपाती है"

सुन्दरविलास ।

इस वास्ते नारी सब भाँति त्यागनेही योग्य है, ऐसा सब महात्माओंका भी प्रमाण है ।

ब्रह्मचारी बोले:--वाह शास्त्रीबाबाजी, आपने ज्योंका त्यों सत्यन्याय दृष्टिसे वेदधर्म प्रतिपादन किया, और है भी वैसाही । केवल स्त्रीविषयसुख पशुवत् भोगनेके लिये ये मनुष्यजन्म नहीं है । देखो, तुलसीदासजी कहे हैं—

चौपाई—"नरसमान नहिं कवनेउ देही ॥
जीव चराचर याचत जेही"

और चौपाई—"कहहिं सन्त मुनि वेद पुराना ॥
नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना" ॥

रामायण उत्तरकांड.

इसी वास्ते मनुष्य चोलेमेंही सत्संग और गुरुभक्ति करके पूरा

ज्ञान कमाना, येही मनुष्यका कर्तव्यकर्म कहिये मूलधर्म है। इसी मनुष्य चोलेंमें ज्ञान प्राप्ति न हुई, तो फिर पशु, पंछी, कृमि आदिक पशु खानिमें पशुवत् धर्म आचरण करनेसे जाना पडेगा फिर पछतावेंगे केवल पतिसेवाही कियेसे स्त्रियोंको मुक्ति मिलेगी ऐसा है नहीं। स्त्री वा पुरुष कोई रह आत्मज्ञानविना जन्म मरण, गर्भवासादि महान् दुःख तीनों कालमें छूटनेका नहीं। पंचतत्त्वोंका नहीं। पंचतत्त्वोंका देह पशु और मनुष्य सबका एकहीसा, मल, मूल, मांस, रक्त इत्यादि दुर्गंधि पदार्थ भरे हुए, अपने और पशुके शरीरमें एकहीसे, इंद्रिय भी कम ज्यादा प्रमाणसे एकहीसी, स्त्री, पुत्र, अन्न घर आदिक सब प्रकार एकहीसा, परन्तु पशुखानिमें ज्ञानकला नहीं है और मनुष्यको सत्य असत्य, भला बुरा निर्णय करनेकी पहिचान, समुझाया ज्ञान ज्यादा है। याहीते कोई पुरुष या स्त्री होय जहां आत्मज्ञानका प्रकाश उदय न होगा, सो आज ही पशुवत् या कदाचित् पशुसेभी नीच पंच विषयोंमें महाधुंद हुवा महापशु है। और काल चोला छूटे उपरांत ये सब विषयासक्त लोग चार खानिके पशु देहीमें जावेंगे। देखो अभिलाषदासजी कहे है:—

छन्दः--"सूकर कूकरके जोग जन्म तेरो भयो"

अभिलाषसागर पंचम तरंग.

इसी प्रकार मनुष्य ज्ञानराजा मूलमें सच्चा, परन्तु बन गया

पशुराजा; पढंत मूर्ख अथवा महा अंध ! याहीते हे मनुष्यो ! ! अच्छी राह से संभारके चलो । देखो सुन्दरदासजी कहे हैं:—

छंद-"मारहि काल चपेट अचानक ।
होइ घरीकमें राखकी ढेरी ॥
जैसेही बाप ददा गये छांडिसु ।
तैसेही तूं तजिहै पल फेरी" ॥

अथवा एक साधुने और कहा है:—

दोहा-"काल करंते काल है, आज करंते अब्ब ।
पलमें परलै बीतिया, फेर करोगे कब्ब" ॥

इसीवास्ते हे मेरे भाई हो, सब हुशियार हो जाव, और ऐसा अमोल हीरा मनुष्य देह हकनाहक विषय लालचसें मट्टीमें मत मिलावो देखो, सुन्दरदासजी फिर कहे हैं:-

दोहा-काल ग्रसत है बावरे, चेतत क्यों न अजान ।
सुन्दर कायाकोटमें, क्यों हूवा सुलतान ॥

ज्ञानसमुद्र ।

देखो भाई अपनी, हानी घात मत करो, और मनुष्य जन्म अकारथ मत खोवो । जलदी जन्म मरणसे रहित हो जावो ।

विदूषक बोला:-वाहजी वाह सब बडे बडे विषय विलास

में चकनाचूर बेहोश भये, तो हम सरीखे बंदर पशुवोंकी कौन गिनती ।

ऐसा विदूषकके बोले बाद सब उठके चले गये और चित्रपट गिराया ।

## तरंग दूसरा

( मद्य मांस खंडनं और सत्य अहिंसा निरूपण )

प्रारंभमें विदूषक चित्रपटके बाहर निकल आया ।

विदूषक बोला:--कल दुई पांवका भेडिया आया हमारे देख-नेमें ! कितना आश्चर्य कहना भला ! कुछ मुँहसे चली थी बरबर, और पिशाचवत् झटका दे रहा था माथेको बरबस पकड लाया था एक बकरा, और रखी थी गलेपर छूरी ! मिल गये थे और दशपांच दुई पांवके भेडिये और खाके उडा दिया सब पार !

इतनेमें एक ग्रामजोशी आये ।

ग्रामजोशी बोले:--वाहजी वाह विदूषक महाराज ! खूब कमाल की । क्योंरे वा भेडिया था क्या ! हमही तो देवीकी मंत्र उक्त पूजाविधि कर, एक बकरा वही देवीको बलिदान दिवाया । बकरा मारनेवाले दूसरे सब मनुष्यही तो थे । उन्होंनेही देवीका प्रसाद जान थोडा थोडा मांस आपसमें बांटके खा लिया । उनकी करनी वे जानें कुछ उस बातसे हमको जरूरत ? अपनी दो रुपयाकी कमाई नाहक क्यों खोना भला !

इतनेमें एक जैनधर्मी बनियां आया ।

जैनबनियां बोलाः—भाई ये ग्रामजोशी नहीं हैं । ए तो सब गांवके दोषी ! पके ग्रामकंटक ब्राह्मणही जानो । " अहिंसा प्रथमो धर्मः " कहिये कोई जीवको बंधन करके उसको दुःख कभी देना नहीं. ऐसा धर्मका मूल दया तुमही तो वर्णन करते हो । देखो, एक साधुने कहा हैः—

शब्दकी कडी. "बोलता चालता सजीव बकरा देवके आगे काटें ॥ सबी आलम मिलकर खा गये देवको बतावै झांटें ॥ "

क्यों जोशीजी, देव देवी बकरा सचही खाते होंगे फिर सब दुनियामें उन्होने बकरे काहेको रखे हैं भला ? देवतोंको बकरेका मांस बहुतही प्यारा है, तो खेतमें बकरे चरते बखत उन्होंने नाहर-सरीखा पकडके कभी खाते सुना भी नहीं । देवतोंको कुछ लज्जा शरम है ? कि,कोई मारता है ! अथवा किसीका डर है ? याहीते ऐसा दीखता है कि तुम लोग चांडाल पापी हो ! जडरूप पत्थरोंके आगे चैतन्य बकरा मरवाते हो, ये कितना अधर्म है भला ? देव-तोंका नाम ले आपसमें ही बकरा खानेको शिखावना ! ये केवल स्वादलपट, मनसुखी राक्षसधर्म तुम लोगोंने निकाला है। जो जीतेही जीवको मुरदा कर मांस खाता है, सो राक्षस नहीं तो कौन ?

इतनेमें एक देवीभक्त आया।

देवीभक्त बोला:—देखो, जैन बनियाजी, देवी देवीका भक्ष उनको देना ही चाहिये। जो कभी न दिया तो नासिका मुंह आदिक वे टेढा कर डालते हैं, रोग व्याधि लगाते हैं अथवा वंश खंडित करते हैं, ऐसी नाना उपाधि सहनी पडती है। ये ब्राह्मणभी अश्वमेध, गोमेध, अजमेध, इत्यादि यज्ञ हवन कर, घोडा, गऊ, बकरा आदिक यज्ञमें बलिदान दे, उसीका पुरोडाश कहिये मांस आगे बडे बडे ऋषि मुनि आदिक अग्नि नारायणका प्रसाद समझ थोडा थोडा खातेही रहे। और अभी कहीं वैसाही यज्ञहवन होजाय तो मांस प्रसाद सब ब्राह्मण खाते हैं ऐसा देख चुके हैं। पूर्व जिसको उत्तर हिन्दुस्थान कहते हैं वहांके अच्छे अच्छे पंडित ब्राह्मण तो विन्ध्याचल, कलकत्ता आदिक देवियोंके सामने कितनेक बेर प्रत्यक्ष अपने हाथसे ही बकरेका गला काट गिराते हैं और मुंडको सीरा जान, कोई पंडित लोग घर लेजाय, सब मिल मांस खाते हैं। ऐसी बलिदान सम्प्रदाय वहां तो आजतक चलीही आती है ऐसा सुनते हैं। बंगाल देशमें कोई बाबू आदिक लोगोंके घरमें मच्छी खाना चलाही आया है। और मांस पचानेके लिये उसीपर शराबभी कहीं कहीं पीते देखे हैं। उदासी साधुओंके एक पन्थमें ऐसी चाल सुनी है कि एक बकरा आंगनामें बांध रख, जो कोई साधु वहां आवेगा उसीने अच्छा जमायके एक

मुका उस बकरेको मारना, अन्तमें उसीका प्राण छूटे बाद, वही बकरेके मांसको चेंदा नाम धराय, शुद्ध जान, सब वहांके उदासी खा जाते हैं। मुसलमानमें "बिस्मिल्लाह हिर रहिमाने रहीम" कहिये सर्व विश्व या खलकमें अल्लाह भरा है, कहीं जागा खाली नहीं। याहीमें तुम सब जीवोंपर रहीम नाम दया करो, तो तुमही रहीम अथवा खुदाके नूर हो, ऐसा सच्चा अर्थ कोई कहते हैं परन्तु ऐसा न होगा, तभी तो वही शब्द पढ, हलाल कहिये गऊ, बकरा, मुरगा आदिक पशुओंको छूरियोंसे गला कटाय, पाक शुद्ध ठहराय, वही मांस कितनेक मुसलमान अपना खाते हैं। और पीरोंकोभी फतियादेते हैं अर्थात् चढाते हैं। बहुतेरे पारसी लोगभी मांसकी ही ओट पकडनेवाले। कितनेक अंग्रेज लोग मनुष्य ईश्वरका नूर या पुतला मान, केवल मनुष्योंमेंही आत्मा है ऐसा ठहराय, इतर बहुतेरे पंछी आदिकोंका मांस जानों जैसी खेतकी तरकारी ऐसा समझ, वध करके खाते हैं। सारांश मांस खानेको वेद, कुरान, बायबल आदिक सब शास्त्रोंमें आज्ञा है इस वास्ते पशुवध करनेमें जीव हिंसा होतीही नहीं, फिर दोष काहेका रहा भला !

जैन बनियां बोला:-वाहजी, राक्षसधर्मी देवीभक्त ! कैसी सुंदर वस्तु तुमको मिल गई अरे भैया अच्छा कान देके सुन तो सही। देख स्त्रीका रज कहिये लोहू जिसको कोई कोई जातिमें साधारण

छूनेकाभी महा विटाल मान, स्त्री रजस्वला होनेबाद उसीको तीन दिन छूतेभी नहीं कभी छूत होगई तो स्नान करते हैं। वही विटाल अर्थात् रजरूप रक्त और मनुष्यका वीर्य ये दोनों मिलके मांसका गोला सब देह तयार हो जाता है। तो तुम देहरूप वृक्ष अथवा मांस मुँहमें डाल बगले माफिक लील लेते हो और ओंठ चाटते हो। परन्तु जैसा गेहूं, धान, ज्वारी अथवा आंब, कटहर, नारियल आदिक झाडोंका बीज अपना खाते हैं। तैसेही रक्त और वीर्य ये मांसका बीज जिह्वासे चट् चट् पानी चाटनेवाले हिंसक पशु-समान आनन्दसे चाट, तुम सहजही खा जाओगे। तो आजसे तुमने रजस्वला स्त्रीका विटाल जो रक्त सो पी लेना भला? उसीमें बडा भारी स्वाद रहता है! पशु तो अपनी जातिमें स्त्रियोंके भगका रक्त और अपने शिस्नका वीर्य चाटके खा जाते हैं। तैसा तुमकोभी करनेको अब कुछ शरम हैही नहीं। केवल रक्तमय खटकिरवा, गेंडोंलवा लोटनी इत्यादि प्राणी वैसेही तुम फुटाने माफिक सहजही चवाय खा जाओगे नहीं भला! अथवा अपना सगा, मा, बाप, स्त्री, प्यारा लडका आदिकोंका प्राण छूटनेपर रोने पीटनेकी कुछ जरूरत रहीही नहीं। अच्छी अच्छी मेवा मिठाई व्यंजन खिलायके पुष्ट किया हुआ उनका देहरूप मुरदा तुम कच्चे फलकी नाईं तोड तोडके सहजही गपाक दै खा जावोगे, आजसे ऐसाही करना भला!

गांवके बाहर ले जाय, गाडना, जलाना अबसे सब छोड़ ही देओ।

बीचहीमें विदूषक बोला—वाहजी वाह इनको देवीभक्त कहना अथवा श्मशान में मुरदा खानेवाले मुरदाफरोशी भाई; आजसे तो इनको जीता भूत प्रेतही कहना पडेगा।

फिर जैन बनियां बोलाः—देखो जैसी अपनी माता वैसी गऊ भी माता समान है। क्योंकि गऊका दूध, मलाई, दही, घी इत्यादि पदार्थोंसे अपनी देह ताजी मोटी सशक्त बनी है। और गऊ से अपनेको बल प्राप्त हो उन्होंसे खेती कामबनमें बडा फायदा निकला है। खेतीसे पैदा हुवा अन्न अपना जीवनही हुवा है। ऐसे गऊ के बहुतेरे उपकार न देख कोई मुसलमान और अंग्रेज लोग गऊको हलाल कर उसीका मांस खाते हैं वे कितना नीच ( अधम ) कर्म है भला ! ईश्वर वा खुदाके हुकुमसे मर गई सो गऊ हुई नापाक और आपने छुरीसे गला काट मारी सो हुई पाक ! यह कितना अन्याय है। याहीको कहते हैं ईश्वर वा खुदा का न्याय तोडने वाले पक्के काफर, देखो अपनी माताको वध करने में कितनी दया और प्रेम बढाय महा दुःख मानते हैं फिर उसीका मांस खाना रहा बडा दूर तैसेही अत्यन्त फलदायक मात समान गऊका कुछ भी दुःख न हो और मारडाल उसीका मांस रसोईमें पकायके खुशी होकर मेजवानीका ठाठ होता है। वाह ये कितना बेदर्दी वेपीर कर्म मनुष्य बुद्धिका विचार कुछ भी किसी ने

रखना ही नहीं ! हिंदुओंका झटका और मुसलमानोंका हलाल एकही तो है देखो तुम्हारे को पशुवत् तीक्ष्ण नख और दांत अथवा पंछी-वत् तीक्ष्ण चंचूभी मांस खानेको है नहीं । अन्नबिना केवल मांसही खाकर तुम जीवोगे भी नहीं । इसीते सिंह, नाहर, भेडिया, स्यार, कुत्ता गीध, चील, काग आदिक क्रूर पशु या पंछी समान हिंसक मत बनो काल वा यम वही हैं जो जीव वध करते हैं, ये विचार चित्त में दृढ रखो, और अपने समान सब जीवों पर एकसी दया क्यों नहीं रखना भला ?

बीचहीमें विदूषक बोला:--देवभक्तजी, विष्ठा खाना एक बेर अच्छा है परन्तु मासरूप लाल तरकारी बडी बुरी चीज ! समझ बूझ के दिलसे छोड ही देव ! अब तुम्हारे दांत टूटनेमें कुछ बाकी रही क्या !

फिर जैन वनिया बोला:--देवीभक्तजी, ऐसेही मांस पचावने के निमित्त मदिरा पीना, ये भी महा नीच कर्म है क्योंकि, मदिरा पी उसी नशाके मारे उन्मत्त हो जाते हैं उसीमें कहीं भी नंगे खुले हो पडे रहते हैं । मुंहमें मक्खियां जातीही हैं । और रस्तामें झुक झुक चलके मन माने सो बुरी बातें बकते हैं ! आपसमें मारपीट भी करते हैं । कितनेक तो विशेष मदिरा पीनेसे मरही गये । आखिर मद्यके व्यसनमें द्रव्य गँवाय दरिद्री बनजाते हैं, याहीते मद्य पीना भी महा निंद्य पशु कर्म है, इसको भी तुम छोड

देव । आपनेही पाषाण घडवाय देवमूर्ति बैठाय दी है, सो अपना क्या नुकसान करेगी भला ? जो तुम्हारा दिलही न मानता होय, तो देव देवियोंको मेवा मिष्टान अच्छे अच्छे फलादिक चढावो । मुसलमानोंने भी पीरों को मलीदा चढावना । उसीसे जीव हिंसा भी न होगी और तुम्हारा धर्म भी रहेगा । देखो भाई. अन्तमें वह प्रसाद खानेवाले तो सब तुमही हो ! इसवास्ते ऐसे सब अनाचार दुंद छोड दो, दिलको साफ कर सब भाँति दुबिधा दूर बहावो, और दिलमें मनुष्यका गुण समतारूप दया भाव पूरा धारण करो । ऐसी शुद्ध चाल चलनेसे तुमको कुछ पाप लगता है क्या ?

देवीभक्त बोलाः-देखो जैन बनियांजी, सब पंथ और मतों में वाम मार्ग और दक्षिण मार्ग ये दोनों मार्ग सनातन कालसे चलेही आवते हैं, कुछ आज कलके नवीन नहीं । दक्षिण मार्गमें निहंग ब्रह्मचर्य व्रत धारियोंको मठाधिपति थाप अपने पंथकी गादी चलावते हैं । मद्य मांस आदिक छूतेभी नहीं, बडे शुद्ध आचार से चलते हैं । दूसरा वाम मार्ग यद्यपि महानिंद है, तोभी महादेवने निकाला है । उन्होंमें गृहस्थ या विरक्त कोई भी रहै परन्तु वह वाम मार्ग गुप्त रीति से चलावते ही रहते हैं । जैनी, कबीरपंथी और मनभाऊ ये जीवदया तो पालते हैं परन्तु इन्होंके भी कोई कोई मत में चेला चेलियोंसे तन, मन, धन सहित सब गुरुको अर्पण

करवायके इन्द्रियोंका कर्म इन्द्रिय करते हैं ऐसा दृढाय केवल भूल धोखा दे प्रत्यक्ष अपने चेलियों से संभोग करते हैं। वा हजी इनको गुरु कहना अथवा गोरू ढोर या पशु कहना ! कहना तोभी क्या भला ? मान भाऊके एक पंथमें ये गडबडगुंडा किसका राधाकृष्ण गोपाल का, होने देव फिर, ऐसा कहकर बाबा कहलाय, अपनी चेलियोंसे मैथुन प्रसंग करते ही है ! बाहर काला वस्त्र पहिरे हैं फिर अन्दर कालापना क्यों न रहेगा ? देखो ये कृष्ण भक्तोंका प्रताप ! कबीर पंथियोंके एक मतमें भी वही अनर्थ चला है। सुनो उनके ग्रन्थ का प्रमाण:—

चोपाई—"गुरु सोई जो पारस देई।
औ—सीख सोई जो पारस लेई"

इसीमें पारस कहिये शुद्ध समुझ या प्रकाशरूप ज्ञान ऐसा सच्चा उसका अर्थ है। परन्तु छल कपट विषय बुद्धिसे अर्थका अनर्थ कर, वीर्यको पारस ठहराय गुप्त रीतिसे यहां भी चेलियोंसे वही प्रसंग हो रहा है। नाम तो रक्खा साधु वा गुरु और कर्म ऐसा खोटा होना ! ऐसी स्थितिको गुरु और कर्म ऐसा खोटा होना ! ऐसी स्थितिको गुरुपंथ या शुद्ध मार्ग कहना, तो भगपंथी कौन ? तुमारेभी जैन धर्मके एक मतमें, कोई चेलाकी स्त्रीको प्रथम ऋतुप्राप्ति होनेबाद पहिले उनके गुरुने भोगेबिना वह स्त्री शुद्ध होतीही नहीं ! तुम्हारे जैन धर्ममें अधर्म द्रव्य कहिये अधर्म

कर्म उस मतके गुरुको शुद्ध ठहराया है इसीसे ऐसी अधर्म गुप्तचाल चलीही है, ये गुरु नहीं तो एक मोटा सांडही कहना होगा ! तुम गृहस्थ लोग हमारे ही भाई स्त्री सेवा करनेवाले बाममार्गी निर्दयी हो, किस प्रकारसे सो सुनो । मैथुन कर्ममें तुम लोग अपने और स्त्रीकी शक्तिकी हानी करते हो, स्त्रीको पेटमें नौ मास बालकका गर्भ बोझ ढोवनेका दुःख, बालक जन्मते समय अति दुःख मानो पुनर्जन्मही, फिर भंगीसमान प्रतिदिन छोकडेका गू मूत उठाना, नाना प्रकार रोगव्याधि उसकी सहना, बहुत क्या कहूँ बालपनसे चोला छूटेतक छोकडेका रात दिन मा बापको चिंताका हृद्रोग, ऐसा सर्व प्रकारसे जीवतेतक दुःखमें मरना होता है, याहीते ये छोकडा नहीं तो दुःखका घर ही खडा किया ! वाहजी, कितने बडे तुम दयावान !

ऐसा सुनतेही जैनधर्मी बनियाका चेहरा उसी वखत उतर गया ।

विदूषक बोलाः—वाहजी भाई वाह, अच्छे ये जैनधर्मी, मान भाऊ और कबीर पंथी बगुले गुरु ! ये दयाके भूत अथवा महानिर्दय यमके दूत ! अरे देवीभक्त, अब पक्का वाममार्ग कैसा है सो सुनाव तो सही !

देवीभक्त बोलाः—देखो, कर्णछेदीनाथ गोकुलिया और अवधूत गुसांई; वल्लभाचार्य, संन्यासी और कोई ब्राह्मणादिक सब मतोंमें ये

वाममार्ग गुप्त प्रकारसे चलाही है उसीमें मोक्ष इच्छासे मदिरा मांस, मच्छी मुद्रा कहिये मांसकी पदार्थ और मैथुनकर्म ऐसे पंच-मकार सेवन करते हैं। उनमें अति व्यभिचारी महा नीच स्त्रीको योगिनी, व्यभिचारी पुरुषको योगी, मदिराको तीर्थ ऐसे सब पलटाय अशुद्ध पदार्थोंके शुद्ध नाम रखे हैं ऐसा कहा है:—

श्लोक—"परांगना प्रयागश्च रजकी पुष्करस्तथा॥
चर्मकारी भवेत काशी, सर्वतीर्थं रजस्वला"॥

वामतन्त्र

सारांश, पराई स्त्री प्रयाग तीर्थ, धोबन पुष्कर तीर्थ, चमारिन काशी तीर्थ और कोई भी जातकी रजस्वला स्त्री तो सर्व तीर्थ समुद्रवत् शुद्ध मान, पूर्णिमा रोज वा कोई सेवकको उपदेश देनेबखत, स्त्री पूजन समय उसी स्त्रीको योनिको जिह्वा लगाय, मन्त्रका जाप करते हैं। एकका एक जूंठा खाते हैं, वह पूजन कोहुई स्त्री देवीने बहुत मदिरा पी उलटी हुए बाद उस वमनको गुरु और शिष्य प्रसाद जान चाट चाटके भक्षण करते हैं, याहीते इसीको वाममार्ग कहा है अंतमें ऐसा भैरवीचक्र करके मदिरा पी, उन्मत्त हो वह, मन चाहे उस स्त्रीसे संभोग करते हैं। माता, बहिन, बेटी, अथवा कोई जातिकी महानीच स्त्रीको दोष रखतेही नहीं। जबतक देह साबुत है तबतक सब विषयरस अच्छी प्रकारसे इंद्रियोंको देनाही चाहिये ऐसा मन्मथी धर्म खडा किया है। और वह ऐसा कहते हैं:—

अर्ध श्लोक–'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः'॥

तात्पर्य, पंचतत्त्वोंका देह पंचतत्त्वोंमें मिल गया तो मुक्त हुवा ऐसा ठहराय, मन माने सो अनाचार हो रहे हैं। और इसी वाममार्गको महा शुद्ध मान लिये हैं।

विदूषक बोला:–क्या बडा आश्चर्य है! वाहजी, अच्छा महादेव पूरा सभंगी! म्लेच्छको रोमांच खडे होने माफिक ऐसा वाममार्ग निकाला है! बैलपर बैठनेवाला सचही बैल दीखता है! धिक्कार है, महामूर्ख विषयासक्त बेटा?

इतनेमें एक पंडित आये।

पंडित बोले:—सुनो जोशीजी तुमारेमें मांस भक्षण सफा छोड दिया है सो चाल बहुतही उत्तम है। रे सुनो, भगवद्गीतामें कहा है।

श्लोक–'विद्याविनयसंपन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः'॥

अध्याय ५ श्लोक १८।

अभिप्राय ऐसा है। विद्वान सुशील ब्राह्मण, धेनु हाथी, कुत्ता और कोई भी जातका नीच चांडाल मनुष्य ये सर्व ऊपर सर्व दृष्टि-रखके निर्वैर रहेगा, सोई पंडित वा ज्ञाता है। सुनो तुलसीदासजी कहै हैं:–

चौपाई—'सिया राममय सब जग जानी'।

रामायण बालकांड।

सब जगह जीव पूर रहे है, याहीते हत्या कोई जीवकी नहीं करना । विच्छू सर्प आदिक दुष्ट, दुःखदायी जीवोंको भी बचाय लकडेके चिमटामें पकड, घरके बाहर छोड देना । क्यों कि जैसा अपना जीव तैसा सबका जानना चाहिये । परन्तु तुमारेसे कोई लोग गुड शक्कर या पूरनकी रोटीमें बहुत चीटियां घुस गई तो उनको सफा अलग निकाले विना वैसीही मीजके उसीमें दूध मिलाय, पेटमें स्वाहा कर लेते हैं ! बरसातमें चिउटा समान लाल कीडे घरमें भूमिके अन्दरसे बाहर निकल, जूथ जूथ इत उत फिरते हैं , उन्होंपर चूल्हेसे अंगार निकाल, बिथारके यज्ञही करते हैं ! घरमें डांस मसा या आंखिके सामने गूं गूं शब्द करनेवाले बहुतही छोटे मच्छर हुये तो, उनमें बडोंके अंगपर एक थपरा मार, और, छोटोंको हाथपर हाथ दे ताली बजाय, अन्दर उन्होंकी थपरा रोटी बनाते हैं ! दिवालमें खटमल हो गये तो हाथमें दिया ले ज्योतिमें उन्होंको होमते हैं । पलंग, पलना और खटियामें बहुत खटमल हुये बाद बड़ा बडा तपाया गरम जल उन्होंपर डार मुर- दोंकी ढेर लगाते हैं । वाहजी; कितना भला क्रूर कर्म हुवा । दरना. मूसलसे कूटना बहारना, लीपना और अन्न पकावना ये पांच जगहमें जीव मरते हैं, वह, पंचसूना या पंचजगह जीवहिं- साका पाप छुडावनेके वास्ते वैश्वदेव कर दश बीस भातकी आहुति अग्निमें डालेसे हो गये निःपाप ?

बीचहीमें विदूषक बोलाः—वाहजी वाह, आंखिको रोग और पावको मलम पट्टी ! ये तो तारीफ करने माफिक बहुतही उत्तम न्याय !

फिर पंडित बोलेः-और देखो, बरसात समय गोबरमें दश पांच कृमि देख, और कहीं गोबर न मिलनेसे अलक्ष कर उसी गोबरसे लीपके पवित्र मानते हैं ! चावलके बोरियामें बहुत कृमि हुये बाद वैसेही देते हैं कूटनेको और ऊखलमें कूट, मिलते हैं उन्होंके सब अंगरस उसी चावलमें ! कितना भला ये निर्दयी कर्म हुवा ? उसी चावलके भातसे सहस्र ब्राह्मण भोजन करवावे, वह पुण्य हुवा अथवा पुण्यका क्षय ! गेहूं ज्वारी बाजरी इत्यादिक अनाजमें सोंडादि कीडा हो गये तो विना फटक पछोर, छांहमें बिछाए देना छोड, अच्छे तप्त घाममें डार. जलवलके उन्होंके बन गये मुर-मुराही ! देखो, इसी प्रकार सब जीवहिंसा अनाचार छोडो। और मुख्य अपने जीवपरसे दूसरे सब प्राणीमात्र जीवोंका दुःख जानके जीव हिंसा कभी न करना। और येही चाल अपने कुटुम्बमें सब मनुष्योंको शिखावना। ऐसा मार्ग बहुतही उत्तम है। नहीं तो जान बूझके कोई जीवकी हिंसा या घात किया तो उसीका बदला दूसरे जन्ममें जरूर देना पडेगा। फिर वहां भी ऐसाही तुम्हारा घात होके दुस्सह दुःख सहोगे तब रोवोगे इसलिये हे मेरे भाई ! अबतोभी जीवहिंसा न होनेपर पूर्ण निगाह रखो। नहीं तो नाहक

कोई जीवमात्रको सतावना, ये पशुवत् महानिर्दयी चाल नहीं है क्या ?

ग्रामजोशी बोले:—पंडितजी, कितनी सूक्ष्म चुनचुनके आप जीवहिंसा निकाले हो। ऐसा चलना बहुतही कठिन दीखता है भाई ! सचमुच इसकाभी विचार करना चाहिये हमारे यहां स्त्रियोंके बालोंमें अथवा साधुवोंके बडे बडे जटावोंमें न धोनेसे जब जुवां हो, बहुत काटने लगतीं हैं, तब वही बालोंमें पारा अथवा कोई दूसरी वस्तु डार उन्होंको मारते हैं। और कई कपडे चार आठ दिन न धोनेसे उन्होंपर चीलर कहिये जुवां माफिक सफेद जीव बहुत होते हैं, तो ऐसे जीवोंको मारना ये भी जीवहिंसामेंही आया ऐसा हमको समुझ परा, परन्तु कोई आर्य समाजवाले अंडामें जीव नहीं है ऐसा ठहराय, निधडक खाय लेते हैं, इसीका कारण कौन है भला ?

पंडित बोले:–जोशीजी ! वे सब वेदमतको श्रेष्ठ मानते हैं वेदमेंभी जीवहिंसाकी आज्ञा नहीं है। परन्तु यज्ञ, मधुपर्क पूजा और पितर देवतादिक कर्मोंमें केवल पशु वध करनेको आज्ञा है। प्रमाण सुनो:-

श्लोक–"यज्ञार्थपशवःसृष्टाःस्वयमेव स्वयंभुवा ॥
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥"

"मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥"

एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद्विजः ।
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥"

मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक ३९-४१-४२

भावार्थ ऐसा है, यज्ञमें पशु वध कियेसे दोष नहीं, क्यों कि, यज्ञसिद्धिनिमित्तही ब्रह्माने पशु उत्पन्न किये हैं । सुनो, भगवद्गीताका प्रमाण –

श्लो०–"अन्नाद्भवंतिभूतानि, पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

अध्याय १४ श्लोक ३ ।

सारांश--यज्ञसे पानी, पानीसे अन्न, अन्नसे सर्व प्राणीमात्र भूतजात उत्पन्न होते हैं । याही हेतुसे यज्ञमें पशु वध कियेसे हिंसा नहीं होती । तैसेही मांस बिना आगे मधुपर्क पूजा नहीं होती थी । काहेते कि वशिष्ठादिक तत्त्वज्ञानी ब्रह्मवेत्तोंकी आगे ऐसे ही मधुपर्क पूजा विधि हुई है । उसीमें ये गऊका बछडा या बच्छी हमको चाहिये ऐसा कहिके, केवल वैसे पुरुषोंने हस्तस्पर्श कियेसे शुद्ध मान, वह पशुका मांस सब मिलके भक्षण करते थे । देखो, जब एक अद्वैत ब्रह्म है तब मांस ब्रह्मसे कुछ थोडा ही न्यारा है ?

और वैसा वध किया हुआ पशु और तत्त्वज्ञानी उत्तम देह धरके दोनोंभी स्वर्गादिक उत्तम भोगनेको जाते हैं, ऐसा ठहराये हैं ।

वीचहीमें विदूषक बोलाः- वाहजी, ऐसे महाज्ञानी तो फेवल दुई पांवके वाघ भेडियाही कहना होगा ?

फिर पंडित बोलेः तैसे ही श्राद्धमें मांस खानेवाले ब्राह्मण द्वारा पुण्य प्राप्ति हो, सव पितरोंकी मुक्ति गति होती है ऐसा माने है । परन्तु सांप्रत कालके श्राद्धमें मांसके वदला उडद लिये हैं। क्योंकि, वह रीति नीच दीखने से कोई ज्ञानीने तोरडाली है ऐसे तीन प्रकारसे मांस खाने की वेदमें आज्ञा है । इसीते यद्यपि कोई आर्य समाज वाले ऊपर ऊपर जीव हिंसा नहीं करना ऐसा दर्शाते हैं, तथापि वही तीन आधार से उन्होंके एक मार्गमें कोई अण्डा और कोई मांस भी खानेका प्रकार गुप्त रीतिसे चलाही है । देखो जो अण्डामें जीव नहीं ऐसा माना जाय, तो अंडा फूटने वाद मुरगीका वच्चा कैसा वाहर निकल पडता है !

'जो जल बावडीमें होगा सोई डोलमें निकल आवेगा' इसीते अंडामें निःसंशय जीव हैही । भला जीव नहीं है ऐसाभी माना जाय तो जव गऊ भैंस इत्यादि पशु वियाते समय या स्त्री प्रसूत होतेसमय एक अंडा समान नारियलवत् जलकी छोटीसी मोट भग-द्वारसे वाहर निकल आती है उसको जलही समझके उन्होंने खानाही चाहिये नहीं भला ? परन्तु वडे स्वार्थ साधु क्या कहते हैं

ये अंडा आलुकी नाई एक फल है, और अंडासे ताकत बढती है, खानेको कुछ भी दोष नहीं, ऐसा कहिके निधडक खाय लेते हैं। देखो, पशुवोंमें सूकरको विष्ठा भक्षण करनेसे सबसे विशेष शक्ति रहती है। उसी विष्ठाको उन्हें भी भक्षण किया तो, उन्होंको अंडासे भी ज्यादा शक्ति आजावेगी तो ऐसी चाल चलाना कि नहीं ? भला क्या कहैं ? जिसके मनमें जैसा आया वैसीही कुमति ठान मार्ग या धर्म निकाला है मनुष्य बुद्धिका गुण केवल अंकुर मात्र भोजन करनेका सच्चा न्याय कौन देखाता है ? बहुतेक जिह्वा लंपट स्वादी तो बने हैं ?

ग्रामजोशी बोलेः--सुनो पंडितजी सकल झाड बेली और अनाजकी पैदावारी गेहूं चावल इत्यादि अठारह प्रकारका अनाज और कंद मूल फल आदिक सर्वही भोजन करते हैं। तो ये नित्यकर्म संबंधमें एक बडा जीव हिंसा दूसरा बापही कहना पडेगा ? काहेकी निर्वैरता लाई हो कुछ बोलो ही मत !

पंडित बोले--देखो महाराज उन सर्व अंकुरोंमें जीव हैही नहीं। क्योंकि जहां श्वास लेना चलना बलकरनादिक क्रिया और देहका सुख दुःख जाननेकी गति या चेतन्य सत्ता है वहां ही जीव हैं ऐसा जानो। जैसे देह ऊपरके सब बाल निर्जीव जड हैं तैसे ही सकल पृथ्वी ऊपरके अंकुर मात्र निर्जीव जड हैं। जैसे अपने बाल काटनेसे जीवको दुःख होता नहीं तैसीही पृथ्वी ऊपरके सर्व अंकु

रोंकी स्थिति है । जैसा पृथ्वीका भाग चर्म और जलका भाग लोहू, ये दोनोंके संबंधसे मांसरूप कीचड बन, उसी संधिमें बाल बढते हैं, तैसेही पृथ्वी और जल ये दो तत्त्वोंके विशेष संधिमें अर्थात् कीचडके संबंधमें सर्व झाड बढते हैं । जैसे बाल पकनेपरभी जीव शरीरमें रहनेसे वैसे ही देहमें बढते रहते हैं, तैसे ही जलका अंश उष्णतासे आकर्षण होने उपरांत सब झाड सूख जाते हैं फिर श्वेत बालवत् कभी बढते ही नहीं । जैसा पृथ्वी का भाग शराब कहिये मट्टीका दिया और जलका भाग तेल, ये दोनोंके विशेष सम्बंध से दीपक का प्रकाश होता है तैसेही जल और पृथ्वीके विशेष सम्बन्धसे सब अंकुरमात्र रहे और तेजवान् दीखते हैं । देखो, सो प्रकाश भी जीवका नहीं है । तो केवल पंच तत्त्वोंका ही है । झाडों में विशेष सब तत्त्वोंका भाग रहनेसे शाखपत्र, मंजरी, फल, फूल, बीज आदिक उत्पन्न होते हैं । परन्तु शरीर के बाल बहुत ही सूक्ष्म रहने से वैसी स्थिति होती नहीं तो केवल बालोंके अग्रमें दो भाग फूटते हैं । यही ते जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिकेही परे महाजड अवस्था सकल अंकुरोंकी है । उन्होंमें ज्ञानीय कला नाम चैतन्य कला जीव है ही नहीं ताते केवल जड पंच तत्त्वोंके प्रकाश रूप पदार्थ अनाज, फल कंद, मूल इत्यादिक अंकुरमात्र खानेसे जीव हिंसा होतीही नहीं, फिर वैरभाव तो भी कहांसे होयगा भला ?

ग्रामजोशी बोले-सुनो पंडितजी, रामायण में गौतम की नारी अहिल्या शिला होके पडी थी, और प्रेमसागर में विमलार्जुन कुबेर पुत्र गोकुल में नंद आँगनमें वृक्ष हुए थे ऐसा वर्णन है। आप वृक्ष पाषाणोंमें जीव नहीं है ऐसा कैसा कहते हो ?

पंडितजी बोले:-देखो जोशीजी, प्रत्यक्ष वृक्ष और पाषाण कुछ जीव नहीं हैं। वृक्ष में कीडा रूपसे और पाषाण में मेंडक या कोई कृमि रूपसे वे देह धरके रहे होंगे, ऐसा कदाचित् माना जाय तो चलेगा। देखो, केवल पाषाण की बनी हुई मूर्ति देवता मात्री है, परन्तु वह भी प्रत्यक्ष श्वास लेना चलना, बोलना आदि कोई भी क्रिया नहीं करती तो साधारण पत्थरोंमें जीव है ऐसा मानना तो भी कैसा ? कितनेक बरससे मट्टी या बालऔर जलकी सहायतासे बडे बडे पत्थर या शिला बन जाती हैं. ये प्रत्यक्ष प्रमाण छोड, नाहक अनुमान में क्यों पढना भला ? वेदका प्रमाण ऐसा है ''रमतीति रामः'' कहिये अणु रेणुमात्र सर्व में परमात्मा व्यापक है। केवल हरे घास पर पांव पडने से भी सूख जानेबाद जीवहिंसा होती है ऐसा कहते हैं। परन्तु सच्ची न्यायदृष्टि से देखोगे तो अंकुरों में कृमि, की आदिक मारनेसे सच्ची जीवहिंसा होती है। अहिंसा का मूल अर्थ ऐसा है कि कोई भी जीवको मन, बच, कर्म से कभी दुःख देना नहीं परन्तु न्याय से विचार कर तुम देखोगे तो, इन्द्रादिक देवतोंने युद्धकर बहुत राक्षस मारे। परन्तु भगवद्गीतामें कहा है -

अर्ध श्लोक-"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥"
अध्याय २ श्लोक २०

भावार्थ ऐसा है, आत्मा नित्य, अविनाशी, अजन्मा है सो किसी प्रकार से शरीर को हनन किये से मरता नहीं। यद्यपि यह सच बात है तथापि जीवमें ज्ञानीय कला है, इस वास्ते चाहे ज्ञानीका विचार एक तरफ छोडो परन्तु अज्ञानी नाना मानंदी करने वाले जीवों को दुःखतो जरूर होवेगा, ऐसा न, जानके राम, कृष्ण, परशुरामादिक अवतारी देवता और पांडव यादव, दशरथ, मयूरध्वज आदिक भक्तोंने शिकार खेलके कितनेक पशु आदिक जीव वध किये हैं, और युद्ध करके करोडों जीवोंका घात कर उनको दुःख दिये हैं। देखो, ऐसे कर्मको व्याघ्रादिक पशुवत महा निर्दयीकर्म कहोगे अथवा राजनीतिका मार्ग, कहना तोभी क्या? अब उन्हों को देवता या भक्त कहना संभवताही नहीं क्योंकि. राजनीतिमें सत्यन्याय नहीं होता, राज्यके अंतमें नर्क, ऐसा कहनेका हेतु यही है। श्रीकृष्णके गीताका प्रमाण "निर्वैरः सर्वभूतेषु" कहिये सब जीवोंपर समभाव जीव दया रखना सो कहां चला गया? "विषकुंभं पयोमुखं" तो श्रीकृष्ण, भागवत, गीतादि उद्धव और अर्जुनको ब्रह्मबोध बताया, परंतु पेटमें कपट और नाहक ऊपर ढोंग, ऐसा प्रत्यक्ष दीखताही है! देखो, तैसे ही

तपस्वी, ऋषि, मुनि इत्यादिक श्रीकृष्णकाही न्याय ब्रह्मज्ञान जाननेवाले, ऐसे ब्रह्मज्ञानियोंने तब और सिद्धि आदिक मदसे महा भयंकर शाप दे, कितनेक जीवोंको दुःख दिये हैं, और कई जीवोंको जलाय भस्म कर दिये हैं। अब प्रमाण सुनो, कपिल मुनिने सगरपुत्र भस्म किये हैं, कितना भला ये तामसी कर्म, सनकादिक मुनियोंने बलिद्वार रक्षक हरिदूत जय विजयको क्रोध-वश हो तीन जन्म राक्षस होवेगा ऐसा शाप दिया। दुर्वासा ऋषिका अंबरीषको दश जन्म गर्भवास भोगनेका शाप, सप्त ऋषि-योंका नहुष राजाको सर्प जन्म लेनेका शाप इत्यादिक बहुतेरे शापके वर्णन हैं देखो, भगवद्गीताका प्रमाण—

अर्ध श्लोक—"समः शत्रौ च मित्रे च।
तथा मानापमानयोः॥"

अध्याय १२ श्लोक १८।

सारांश, शत्रु और मित्र, मान और अपमान, जिनकी समान एक दृष्टि, यह धारणा है वे ब्रह्मज्ञानियोंको भई थी क्या इसीसे ऐसा शाप देना तमोगुणका घर अथवा शांति क्या कहते हो ? एक साधुने कहा है—

चौपाई-"ऋद्धि सिद्धि सब जात नशाई।
अधोगति पुन्य क्षयते होई॥"

अंतमें पुण्य क्षय हुएबाद क्रूर, दुष्ट योनिमेंही जाना पडेगा। सारांश वेदमेंभी जीवदया कही है. परतु अद्वैत सर्वत्र व्यापक एक ब्रह्म ठहराय, ब्रह्मदशामें निर्दयताही पेखनेमें आती है। सुनो तुलसीदासजी कहे हैं:-

**चौपाई-"साधु कौन जाके उर दाया॥"**
**और "दया को भूतद्रोह नहिं करई॥"**

रामायण आरण्यकांड।

तात्पर्य शत्रु मित्र, साधु, असाधु अपना पराया इत्यादिक सर्व सृष्टिके जीवोंपर एकसमान जीवमैत्री या शील स्वभाव निरंतर हृदयमें धारेगा, वही ईश्वर, देवता वा सद्‌गुरु है। नहीं तो सब देवता, ऋषि मुनि आदिक निर्दयी, कालया यम नहीं तो कौन ? याहीते दया दृष्टि निर्वैरभाव सर्व जीवोंसे रखना चाहिये। देखो, शस्त्रका घाव कोई दिनमें अच्छा होता है,परन्तु शब्दका घाव शरीर रहेतक हृदयसे निकलताही नहीं सुनो, सुन्दरदासजी कहे हैं:-

**छंद"सबहीको लागे दुःख कोऊ नहिं पावै सुख।**
**बोलिकै वृथाही ताते छाती नहीं छोलिये॥"**

सुन्दरविलास।

इसी हेतुसे कोई जीवको शब्दद्वारा दुखाना नहीं। कठोर कर्कश, हृदयभेदक वचन मुंहसे कमी निकालना नहीं। अच्छी तरह सरल, मधुर, कोमल, नम्रता तौर न्याय नीतिसंयुक्त रहै,

ऐसाही मीठा, प्रिय भाषख बोलनेका सदोदित व्यवहार रखना।
देखो सुन्दरदासजी और कहे हैं:-

**दोहा--मन करि दोष न कीजिये, वचन न लावै कर्म।**
**घात न कीजै देह सों, यहै अहिंसा धर्म॥**
ज्ञान समुद्र।

इसी प्रकार मनसा, वाचा और कर्मणा जीवमात्रको दुःख नहीं देना। यही जीवदया या सत्य अहिंसा धर्म है। याहीते हे मेरे भाई! निरन्तर अङ्गमें ये गुण धारो। येही तो मनुष्य धर्म सुधारनेको परमार्थमार्गमें प्रथम नेव है।

विदूषक बोला:--वाहजी वाह, ऊपरके आचरणसे देखना तो, बाना देवताओंका अथवा ऋषि, मुनि, योगी आदिक भक्तोंका, परन्तु कर्म कसाइवत्, बडा क्रूर निर्दयी पशुसमान होना चाहिये क्या? क्यों कि ये सब अवतारी देव और ब्रह्मज्ञानी भक्त, प्रत्यक्ष महा तामसी राक्षस ही देख लेव! जो एक भाव जीवदया रखेगा, सोई एक सच्चा मनुष्य है।

ऐसा विदूषक बोला बाद सब उठके चले गये और चित्र पट गिराया।

## तीसरा तरंग.

### ( कर्ममार्ग )

प्रारम्भमें विदूषक चित्रपट खोल बाहर निकल आया।

विदूषक बोला:--वाहजी, क्या बडा आश्चर्य है ! जीव तो ज्ञानी व चैतन्यरूप और बंधन छुडानेवाले जडकर्म कोयला घसके कालाही होगा अथवा उज्ज्वल ! हाथमें लिए काली हंडिया और रहेगा बिना दाग ! छी सब झूठी बात !

इतनेमें एक कर्मिष्ठ ब्राह्मण आये।

ब्राह्मण बोले: -देखो विदूषक महाराज ! तुम्हारे घटमें अकिल कुछ हैही नहीं, केवल मनमाना बकनाही जानते हो ! देखो भगवद्गीताका प्रमाण: -

**अर्ध श्लोक--'कर्मणैवहि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः'**

अध्याय ३ श्लोक २०

अभिप्राय ऐसा है, कर्म आचरणसे जनकराजादिक कितनेक मुक्ति भये हैं। ताते कर्म केवल काला कोयलाही भया !

इतनेमें एक सुधारक आया।

सुधारक बोला:--ब्राह्मणजी, तुमारे और हमारे शरीरमें हड्डी, मांस, त्वचा; नाडियां, मज्जा, बाल, मल मूत्र, वात, पित्त, कफ, लार इत्यादिक सर्व एकसे तो भरे हैं। अन्न, वस्त्र और जल दोनोंको एकसा ही लगता है। दिशा जंगल जाना दंत मंजन

करना, स्नान, निद्रादिक देहके अवश्य कर्म दोनोंके एकसेही। तातें कर्म कहते हो तो इनको छोड और कर्म क्या है सो कहो भला ?

ब्राह्मण बोलेः--सुनो भाई, जो हमारे सनातन वेदधर्म स्थापक ब्रह्मा, मनु, याज्ञवल्क्य आदिक हो गये उन्होंने, इस जगत्में अनाचार विशेष हो, पशुवत व्यभिचारादिक कर्म हो जावेंगे, ऊंच, नीच, भेद अभेद न रहेगा, इसी निमित्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे चार वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ऐसे चार आश्रम स्थापन कर, महा अज्ञान अवस्थासे सीढीके एक एक पैर चढानेवत् अथवा शालाके वर्ग प्रमाण धीरे धीरे चढाय, अंतमें, ब्रह्मबोध दे जन्म मरणसे मुक्त किये हैं। क्या तारीफ उनके मार्गकी कहैं ? बहुतही उत्तम ! यजन याजन कहिये यज्ञ कराना और करना, अध्ययन अध्यापन कहिये वेद पढना और पढाना, दान प्रतिग्रह कहिये दान देना और दान लेना ऐसे मुख्य षट् कर्म हैं। और वेद पढना और पढाना सो ब्रह्म यज्ञ, देव, ऋषि पितरोंका तर्पण सो पितृयज्ञ, होम, देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव सो भूतयज्ञ और अतिथिपूजन अर्थात् दीन गरीब याचकको भोजन देना सो मनुष्य यज्ञ, ऐसे पंचमहायज्ञ हैं। और त्रिकाल स्नान, पूजा, जपादिक नित्यकर्म, श्रावणी कहिये बरस या छः महीनामें हवन करके मन्त्रविधिसे नया जनेउ

पहिरना, श्राद्ध, कुलरीति आदिक नैमित्तिक कर्म, इतने सब ब्राह्मणोंके कर्म हैं। वेद पढना राजसूय अश्वमेधादिक यज्ञ करना, दान देना, प्रजापालन, शिकार खेलना, युद्ध करना ये क्षत्रियोंके कर्म हैं। वेद पढना, यज्ञ करना, दान देना, ब्राह्मणोंकी सेवा, राजाज्ञा पालन, खेती, दुकानदारी, व्याज लेना ये वैश्योंके कर्म हैं। तीनों वर्णोंकी सेवा और रामनाम स्मरण ये शूद्रोंके कर्म हैं। ऐसे चार वर्णोंके सब कर्म न्यारे न्यारे-लिये हैं। देखो भगवद्गीता प्रमाणः-

अर्धश्लोक "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥"

अध्याय ३ श्लोक ३५

तात्पर्य, अपना स्वधर्म ही श्रेष्ठ है; और उसीमेंही अपनेको मुक्ति मिलती है। परधर्मादि आचरणसे अनेक जन्म मरणादिक दुःख भोगना पडते हैं। इसीते स्वधर्म कभी छोडनाही नहीं।

सुधारक बोलाः-देखो महाराज तुम ब्राह्मण सबमें श्रेष्ठ कहलाते हो, परंतु ब्राह्मण किसको कहना ? जो जीवको ब्राह्मण कहना तो जीव सबका एकसाही है, शरीर ब्राह्मण कहना तो शरीर, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश थे पंच तत्त्वोंका सबका एकसाही है। कभी कर्ममार्गसे शरीर ब्राह्मण मानना; तो बापका चोला छूटे उपरांत पुत्रादिक उसी शरीरको जला देतेहै तो उनको ब्रह्महत्या होना सो नहीं

होती, याहीते शरीर ब्राह्मण नहीं। पंडित ब्राह्मण कहना, तो दूसरे जातिमें भी बडे बडे विशाल बुद्धि वाले पंडित भये हैं कि जिनका बोलना बडी बडी सभामें मान्य होता है। इसी वास्ते पंडित ब्राह्मण नहीं। कर्म ब्राह्मण कहाता, तो क्षत्रिय और वैश्योंको भी ब्राह्मणका मुख्य यजन, अध्ययन और दान ये तीन कर्मोंका अधिकार है, ताते कर्म ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण श्वेत, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीत और शूद्र कृष्ण वर्ण ऐसा मानना तो सर्व जातिमें ये वर्ण दीखते हैं, याहीते ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण मुखसे, क्षत्रिय बाहुसे वैश्य जांघसे और शूद्र पांवसे उपजे हैं ऐसा मानना तो सब स्त्रीके भगद्वारा उपजते हैं। ताते उत्पति ब्राह्मण नहीं ब्राह्मण सौ बरस, क्षत्रिय पचास वैश्य पचीस और शूद्र बारह बरस रहिके मरते हैं ऐसा कहना भी नहीं संभवता, ताते आयुष्य ब्राह्मण नहीं। जात ब्राह्मण कहना, तो अन्य जातिमेंभी बडे बडे ब्राह्मण भये हैं जिनको वेदने भी माना है सो सुनोः--

वशिष्ठ गणिकापुत्र, नारद दासीपुत्र, शूद्रिनसे भारद्वाज ऋषि, धीवरीसे व्यास, मातंगीसे मातंग ऋषि, नऊसे गौतम, हरिणसे श्रृंगी ऋषि, मेंडकीसे मांडूक ऋषि, द्रोणसे द्रोणाचार्य, कमलसे ब्रह्मा, घडासे अगस्ति ऋषि आदिक, मनुष्यसे, पशुसे, द्रोणसे, घडादिक जड वस्तुओंसे, जहां ब्राह्मणोंका वीर्य

गिरता था वहां जमके बालक खडा होता था ऐसा वर्णन है, इसी वास्ते जात भी ब्राह्मण नहीं। परंतु क्योंजो, आगेके और अबके बहुतेरे ब्राह्मण लोग शादी बिवाह क्यों करते थे और अभी क्यों कर रहे हैं? मनमाने सो कपोल कल्पना करके नाहक ही गाल बजाना? अच्छा, परन्तु ऊपरके अष्ठ प्रकारसे ब्राह्मण क्या है सो न सिद्ध भया। देखो भगवद्गीताका प्रमाणः--

अर्ध श्लोक-"वासुदेवःसर्वमिति, स महात्मा सुदुर्लभः॥"

अध्याय ७ श्लोक १९.

तात्पर्य, वेदके सिद्धांतकी बात ऐसी है कि, स्थावर, जंगम चर अचर अणु रेणुमात्र पंच तत्त्वात्मक सकल विश्वमें व्यापक एक ब्रह्म अखण्ड अद्वैत रूप ऐसा जाने, सोई पूरा ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण है सुवर्ण भूषण न्याय' अर्थात् जैसा सुवर्ण और उसके नाना अलंकार सब सुवर्ण ही है, तैसे सृष्टिके सकल पदार्थ एक ब्रह्म स्वरूप, न्यारा, कुछ भी नहीं है। इसीते पिंडज, अंडज, ऊष्मज और स्थावर अर्थात् पशु पंछी कृमि, कीट पाषाण आदिक सब खानी मैं हूं अथवा सकल विश्वरूप जगत् मेरा शरीर, और मैं अंदर रहनेवाला अकेलाहूं ऐसा ब्रह्म ज्ञान जो भी हुवा तो भी चार खानोसे न्यारा होकर, जन्म मरण दुःख कैसा छूटेगा? इसीते जड चैतन्यकी ग्रंथि किस प्रकारसे छूटी? बंधा कौन और छूटा कौन? मुख्य श्रेष्ठ वर्ण

तुम ब्राह्मणोंकी ऐसी स्थिति है,फिर चार वर्ण चार आश्रमादिक सब कर्मोका इसी प्रकार दुदही नहीं तो क्या है ?

ब्राह्मण बोलेः–क्यों सुधारक बाबा, तो फिर चार वर्णोंके सब कर्ममें कुछ भी हासिल नहीं, ऐसा ही तुम समझते हो क्या ?

सुधारक बोलाः–इसीमें कुछ संशय है ? केवल पशुवत् व्यभिचार न होनेपावे. इसी लिये विवाह करना और बालपनसे बालकके मा बाप बहुत ही कष्ट सहते हैं, और वेही पुत्रको सुमार्ग शिखाने में प्रथम गुरु हैं इसी वास्ते पुत्रने मा बापकी सेवा करना,ये दोनों मार्ग तो अच्छे हैं परन्तु वर्तमानमें तुम लोग, पडि, चौबे, उपाध्याय, पुरोहित गंगा पुत्र, गयावाला, दक्षिणमें पंढरी तरफके बडवे, भट, भिक्षुक, जोशी, शास्त्री, पौराणिक, पंडित, कथा कीर्तन करनेवाले, हरिदास, गवय्ये, पुजारी इत्यादिक बडे बडे नाम रख, गुरुवा बन, स्त्रियोंको ठग पेट भरनेका उपाय करते हो। और फल, अनाज वस्त्र, शय्या, पृथ्वी, गऊ, हाथी, सुवर्ण, चांदी, रुपैया, पैसा, आदिक नानादान लेते हो, मुसलमानोंने जड, चैतन्य रूप सब खलक कहिये विश्वमें खुदा भरा है ऐसा सिद्ध कर, पैगंबर मौलाना. काजी. पीर, फकीर इत्यादि मुरशद गुरुने शेख, सैयद मोगल, पठान ये चार जात ठान, सुन्नत करने, रोजा रखने, हज्ज कहिये अरब स्थानमें मक्काके यात्राको जाने बांग देने, कलमा पढने, ईद, बारह ईमाम आदिक त्योहार

बार करने, ताजिया बनाने, इत्यादि जड़कर्म थाप, कबर वा मसदजीदमें मुरीद कहिये शिष्य लोगोंसे पैसा वस्त्र आदिक दान लेने बहुत मसाला ड़ाले हुए मीठे चावल, और पुलाव आदिक व्यंजन मिष्टान्न का खाना ऐसे अनेक प्रकार से लूट रहे हैं। ये भी एक प्रकारसे भाडखाऊ चाल नहीं तो कौन ?

ब्राम्हन बोलेः—वाह महाराजजी, अच्छे हो ? देखो, गंगा पुष्क-रराज आदिक तीर्थस्नान और बडे बडे देवस्थानोंके दर्शन, पूजन इत्यादि करनेमें बड़ा भारी फायदा है। एक तो चित्त शुद्ध होता है। अनेक प्रकारके मनुष्य, ब्राम्हण, साधु, संत, फकीर आदिक सज्जनोंके संगतिसे मनमें चतुराई आती है; ज्ञान बढता है, आखिर ब्रम्हज्ञानसे मुक्तिभी होती हैं। यद्यपि मुसलमानोंमें कोई कोई मौलाना, काजी, फकीर, पैगंबर, अवलिया भी भये तथापि मांस भक्षण तामसी कर्म उनका चलाही रहता है। परंतु हम ब्राम्हण लोग मद्य, मांस सेवन करतेही नहीं हम धर्मस्थापक अठारह वर्णके गुरुवा हैं। क्योंकि, हम विद्या पढे हुए रहते, हैं, सदोदित शुद्ध आचार रखते हैं कुछ वेद, शास्त्र धर्म, नीति, लोक और कुल मर्यादा जानते रहते, हैं। हमारे उपदेशसे सब जगत्पर थोड़ा बहुत उपकार है ही। इसी वास्ते हम ब्राम्हणोंको दोष लगाना अच्छा नहीं है। तुम सुधारक लोग महानिंदक हो। सब जगतका चलना एक ओर और

तुम्हारा कहना दुसरी ही ओर चलता है। ऐसे वेदद्रोही, कर्मनष्ट, नास्तिक मनुष्योंका दर्शन हुवा तो, सचैल कहिये मूंडपरसे वस्त्र-सहित स्नान करना तभी शुद्धता आती है केवल तर्कज्ञानभी कुछ काम देगा ?

सुधारक बोला:—तुम्हारा कहना एक प्रकारसे हमकोभी मंजूर है। और तुलसीदासजीभी कहे हैं:—

चौपाई-"परनिंदासम अघ न गरीसा"

रामायण उत्तरकांड

परंतु देखो, निंदक किसको कहना कि, है एक प्रकार और लोन मिरची लगाय, कुछ उलटा पुलटा विपरीत बोलना, ये तो वास्तविक सत्य निंदा है, और जैसेका तैसा सच पक्षपात रहित बोलनेमें कौनसी निंदा है ? जड़ और चैतन्य सर्वत्र एकरूप व्यापक ऐसा ब्रह्मज्ञान शुद्ध और मुक्तरूप तुम ब्राह्मणलोग थापेहो,, ये निंदा नहीं तो क्या निंदाका बाप ! इसको क्या कहते हो ? पीठपर मारे कोरड़े निकाले रक्त और उसपर झिटकाये निमकका जल, तब जैसा ज्यादा दुःख जीवको होता है तैसे ही एक तो जड देह बंदीखानेमें सब जीव पडे हैं, और ब्रह्म-ज्ञान उपदेश दे, दूसरा वारबार जन्म मरण, गर्भवासका दुःसह दुःख सकल जीवोंका भुगताना, ये कितनी खेदकी बात है भला ? सुनोः -

"त्रैलोक्यं कर्मबन्धनात्" इति स्मृतिः ।

सारांश जड कर्मोंमें तीनही लोक कर्म बंधनरूप कैदखानेमें पडे हैं । उनको बंधनसे छुडानेके लिये ज्यादा ज्यादा जड कर्म लगाय दुःखही देना क्यों ? और ऐसे महान् दुःख देनेवाले सकल ब्राह्मण गुरुओंकी स्तुति करना ! निंदा कभी करनाही नहीं वाहजी वाह ! और निंदा हुई तो अंगारवत् सर्व संतप्त होना क्यों ? मुख्य मुक्ति प्राप्त होनेको परमेश्वर प्राप्ति है । परन्तु वेद शास्त्र कर्ताको भी परमेश्वरका अंत नहीं लगा, अनन्त कहके हार गये । वेदभी 'नेति नेति' कुछ मुंहसे कहा नहीं जाता ऐसा कहिके हार बैठे । क्यों कि, अनुमान कल्पनारूप परमेश्वरका खोज तो भी लगना कैसा ? जैसे चावलसे सब कंकर, धान, कृमि आदिक बीन बीन शुद्ध चावल न्यारे करना और फिर एकत्र मिलाना, ऐसेही वेदमें एक एकवस्तुके गुण और दोष व्यतिरेक कहिये न्यारे न्यारे रूप वर्णन कर, अंतमें थाह न मिली सब सकल सृष्टि ब्रह्मरूप सर्वत्र व्यापक, न्यारा कुछ नहीं ऐसा अन्वय अथवा अद्वैतरूप एकता किये हैं, 'घट मृत्तिका न्याय' जैसे नाना घडे और मिट्टी एकहीरूप है, तैसेही ब्रह्म केवल शुद्ध, निर्मल, अविनाशी, रहतेही वही अधिष्ठानसे अशुद्ध, मलयुक्त, नाशवान अनेक घटरूप जगत् उपजा है. याहीते पंचतत्त्वरूप सकल सृष्टि कुछ ब्रह्मसे न्यारी नहीं । भला; ऐसे वेदके

सिद्धान्तको कहना तोभी क्या ? सकल जगत जो शुद्ध ब्रह्मही है, तो तुम लोग फिर उपदेश किसको करते हो और कौन सुनता है ? भ्रांतिवा भूल कहांसे खडी भई और ये जायगी कैसी वाते ऐसा तुमारा ब्रह्मज्ञान ब्रह्मज्ञानकी वा अज्ञानका घर क्या कहना ? 'पत्थरसे ईंट नरम' इसी प्रकार जड कर्मसे तुम्हारी चित्तशुद्धि चतुराई, ज्ञान और अंतमें मुक्ति, ऐसा नहीं तो ज्यादा क्या ठहरा ?

बीचहीमें विदूषक बोला:--वाहजी, जैसे मिट्टीसे घडा कांचकी हंडिया, दुर्बीन, एकसे एक विशेष शुद्ध पदार्थ निकाले हैं परंतु सच न्यायसे आखिर मिट्टीही तो ठहरे । तैसेही शुद्ध हीराकी नाईं प्रकाशरूप ब्रह्म, परंतु आखिर जगत्‌रूप अशुद्ध मिट्टीही तो ठहरा ! ऐसाही पूरा न्याय होता है ऐसे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण अकिलके पूरे होशियार, कहना अथवा शिरमें भ्रमवायु चढके बन गये निपट मूर्ख, क्या कहते हो ?

फिर सुधारक बोलाः—देखो ब्राह्मणजी, जो सत्य न्याय दर्शाय जड देह बन्धन जीवका छुडावे, वही गुरु या श्रेष्ठ है ! तुम लोगोंको केवल गुरु मानना और तुम कुछ भी जड कर्म. जीवोंके पीछे लगाय, द्रव्य कमाय, खाना पीना, कपडा, लत्ता, भोग विलासकी चहल पहल करके विषय बंध भये हो । देखो तुलसीदासजी कहे हैं:—

दोहा-" काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप ॥ ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ परे तमकूप " ॥

रामायण उत्तरकाण्ड ।

याहीते ऐसे गृहासक्त बन, सत्य ज्ञानके ओर केवल शून्य अंधेरा ही ! भला, जो तुमारा सांचा आचरण जगतमें सफा खोलकर बताया, तो रिस चढ, वह मनुष्यका बडा विटाल मान, मूंड परसे स्नान करनेको क्यों सिद्ध होते हो ! जितने तुम लक्षणसे बाहर देखनेको बडे उतने ही अंदर खोटे हो, किस प्रकार सो सुनो, ऋतु शांति, बालकका नाल काटनेके पहिले उसको शहद चटावना सो जातकर्म; उसका बारहवें दिन नाम धराना सो नाम कर्म, उसको चौथे महीनामें सूर्य दर्शन करावना सो निष्क्रमण; अन्नप्राशन विधि, चूडा कर्म कहिये मुंडन, उपनयन नाम जनेऊ करना. वेद पढावना, विवाह, अन्तमें अन्त्येष्टि अर्थात् चोला छूटे बाद तेरह दिनका क्रिया कर्म इत्यादि सोलह संस्कार करनेसे दीर्घायु, धनवान्, विद्यावान्, शुद्ध ब्राह्मण होता है, ऐसा लालच लगाय द्रव्य कमावना येभी ढोंग नहीं तो क्या ? जो सोलह संस्कार भी किये तो ब्राह्मण, दीर्घायु आदिक क्यों नहीं होते ? ऐसे ही देवतोंके जन्म दिन कहिये जयन्ती उत्सव, नाना व्रत, सोमवती, शनि आदि अमावस, कोजागरी आदि पूर्णिमा, व्यतीपात ग्रहन,

मुहूर्त, शकुन, संक्रांति, ग्रहण ग्रह दशा, ग्रह शांति, नाना प्रायश्चित्त, श्राद्ध, कुलाचार, लोकाचार, त्योहार, वार, हव्य कव्य इत्यादि अनेक जड कर्म थापे हो । उसीमें अनेक पाप पुण्य, विधि निषेध, स्वर्ग नरकादिक नाना कर्मोंका फांसा रूप पोथी पत्रा तुमने हाथमें रखा है, और एक एकको जड धोखा दे बांध रहे हो। वाहजी, अच्छी बनी ! जितने कुछ कर्म रूप पाशमें तुम बांधोगे उतना ही सही, क्या करें अज्ञानी लोग बिचारे ?

इतनेमें एक शास्त्रीबाबा आये।

शास्त्रीबाबा बोले:-विप्रजी, यद्यपि सुधारक बाबा है, तथापि न्यायकी बात निःपक्षपातसे बोलता है । छोटासा लड़का भी कोई विवेक बिचारकी बातें करैगा तो ग्रहण करना उचित है । देखो, भगवद्गीताका प्रमाण:—

**अर्ध श्लोक"-नहि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते॥"**

अध्याय ४ श्लोक ३८.

ताते आत्मज्ञानविना केवल कर्म मार्गसे मुक्ति नहीं मिलती। इसी वास्ते आत्मज्ञान सबमें श्रेष्ठ और उत्तम है।

ब्राह्मण बोले:-देखो शास्त्री महाराज, गयाजीमें पिंडदान क्रियासे पिताकी मुक्ति, सिद्धपुरमें पिंडदानसे माताकी मुक्ति और हरबरसमें सब मरे हुये पितरोका पिंड श्राद्ध अथवा नित्य तर्पण कियेसे

सकल पितर मुक्त होने हैं। ताते ज्ञानके ऊपर इतना जोर आप क्यों मारते हो ?

शास्त्री बाबा बोलेः-सुनो विप्रजी ! अभीतक तुम को कैसा पूरा नहीं समझता ? देखो, एक साधुने कहा है--

चौपाई—जियत पितासे झंगम झंगा।
मरे पिताको भेजे गंगा॥
जियत पितासे बूझि न बाता।
मरे पिताको दाल औ भाता''

अथवा—जियत पितर नाहिं पावै अन्ना।
पिंडा पारे मृतक निदाना॥
जियत पितर कभि मिले न पानी।
मृतक भये तर्पन मन मानी''॥

भावार्थ ऐसा है, ये एक बापदादा की लोकरीति चली आई है माता, पिता आदिक पितरोंका बरसमें एक बेर तो भी स्मरण आवै, और कुछ अन्नदानादि धर्म होवे, इस हेतु पिंडा पारनेका पिंडश्राद्ध चला है। देखो जिन पितरोंकी जीते दम आशा नहीं छूटी, तो प्रान छूटे उपरांत नित्य तर्पण अथवा पिंडश्राद्ध क्रियासे मुक्तगति पावैंगे तो भी कैसे ! तुम्हारे पिछले जन्मके कोई पितर अभी जीतेही होंगे, उनका पिंड तुमको कभी आ पहुंचा है क्या ? अच्छा २ सुग्रास अन्न खानेको मिले, याही ते सब हव्य

कव्य त्योहार वार आदिक एक प्रकारसे सच्चा ब्राह्मणोका पेट भरनेका रोजगार ही जानो। इसी प्रसंगसे संसारी लोगोंको भी अच्छा २ भोजन मिलता है। इसीसे तुमको मानते हैं। जिन ब्राह्मणों की स्वतःही स्त्री, पुत्र धनादिककी आशा छूटि नहीं सो आशाबद्ध ब्राह्मण कैसे मुक्त करेंगे ? स्याहीसे कहीं स्याही धोई जाती है ! तातें तुमको सब वर्णके श्रेष्ठ तो भी कौन प्रकारसे मानना ?

ब्राह्मण बोले:-शास्त्री महाराज ! गोहत्या, बालगर्भहत्या, स्त्रीहत्या, ब्रह्महत्या, नाना व्यभिचार, मद्य मांसादिके निषेध पदार्थोंका सेवन वर्ण संकर कहिये जातिभ्रष्टता इत्यादिक सकल कर्मोंके प्रायश्चित कहे हैं । ताते ऐसे प्रायश्चित्तोंसे उन सब पापोंकी निवृत्ति होती है। अथवा फिर भोगने लगते हैं। इसीका धर्म प्रमाण सत्य न्याय कहो भला ?

शास्त्रीबाबा बोले:-देखो विप्रजी, जैसा राजा अपना राज्य जाने नहीं पावै और सर्वत्र प्रजामें शांतता रहे इस हेतु प्रजा जनोंका संकर समय संरक्षण करता है। जरूरत लगी तो कर भी बैठता है। जगह जगह सिपाई लोगोंके चौकी पहरा लगे हैं। न्यायके कोर्ट वगैरह व्यवस्था हैही। चोरी मारामारी इत्यादिक कर्मियोंको कैदखाने बने हैं। डांकामारना, खून हत्या करना इत्यादि महा भयंकर अपराधियोंको फांसी देना,

कालापानी, शूलीपर चढाना, ऐसा बडा भारी राजदंड देता है ये सबका हेतु राज्यमें अच्छी व्यवस्था रहै, और राज्य सुरक्षित राहसे चला जावै । इसी प्रमाण मनुष्य धर्मरूप राज्य कहिये आत्मज्ञान प्राप्ति हौ, जन्म मरणादिक. दुःखोंसे छूट चिरकाल शांतता स्थिर पद मिले, इस हेतुसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश यह हमारे श्रेष्ठ धर्मस्थापक चक्रवर्ती त्रिलोकी राजोंने कर्म, उपासना जौर ब्रह्मज्ञान. ऐसे जड कर्मरूप अर्थात् फिर फिर जन्म दुःख भुगतानेवाले तीन बंदीखाना तैयार कर उन्हींमें सबको समेट डारनेके लिये वेद मर्यादा थापी । और अपना राज्य सुरक्षित चला जावे इस हेतु से, उसीमें शुभ अशुभ, पाप पुण्य विधि निषेध रूप वर्ण आश्रमादिक अनेक कर्म दृढाय, सब मनुष्यरूप शिष्यवर्गका प्रजापालन मार्ग निकाला है योगी, भक्त, ब्रह्मज्ञानी, साधु महंत आदिक चौकीदार, कामदार, न्यायाधीश खडे किये हैं । व्यभिचार, मद्य मांस सेवनरूप चोरी, मारामारी और गोहत्या ब्रह्महत्यारूप डांके मारना किसी का खून हत्या करना, ऐसे सबको नाना चन्द्रायणादिक प्रायश्चित्त और तपश्चर्या, तीर्थाटन, गायत्री आदिक मंत्रोंका जाप, नाना व्रत उपवास ऐसी शिक्षा और नाना भयंकर यमयातनाका डर, शापका डर इत्यादिक बडा भारी दंड ठहराय, मनुष्यधर्मरूप राज्य सुरक्षित चलानेके लिये स्वर्ग लोकादिक सुख विलासकी लालच बताय,

सबको कर्मरूप बंदीखानामें अथवा फांसीमें बांध रखे हैं। सुनो, तुलसीदासजी कहे हैं:--

चौपाई-"सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी ॥
रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥

रामायण उत्तरकांड ।

और ऐसेही निश्चलदासजीभी कहे हैं:--

चौपाई-"और वेदअर्थकूं करि हैं ॥
ते शठ वृथा परिश्रम परि हैं ॥
और भेद धिःकार जुग्रन्था ॥
तहां न भेद खण्डनको पंथा ॥

विचार सागरे 'पंचम' तरंग,

अभिप्राय ऐसा है, वेद और ब्रह्मज्ञानी वेदधर्म प्रकाशक गुरुवोंके उपदेशमें भेद दोष रखनेवाला कहिये अद्वैत सिद्धांत उडानेवाला, महानिंदक, वेदद्रोही, गुरुद्रोही, नास्तिक ऐसी दृढ छापरूप पक्का कोट बांध रखे हैं, जिसमें कोई वेदज्ञानी न तोडे। याहीते वेद धर्मसे चलनेवाले हिन्दूलोग, ये त्रिलोकी महाराजाके राजदंडमें फँसकर, अनेक हत्यादि पाप कर्मोंका प्रायश्चित्तभी लेके शुद्ध होते और ब्रह्मज्ञान पाय जड चैतन्य एकरूप मान सर्वत्र जगव्यापक बनते हैं। इसी वास्ते गर्भवास, जन्म मरणादिक दुःसह दुःख अनेक देह धर धरके सहन करते हैं। वहां फिर प्राणहत्यादिक

सब जीवोंका बदला देनाही पडता है । सारांश सर्व प्रायश्चित्त कर्मोंसे तीनोंभी धर्मस्थापक राजा लोगोंकी सत्ता और अमल कायम रहता है। आजतक अनंत ब्रह्मा, विष्णु, और महेश हो गये हैं. और जब सब जगतका प्रलय होवेगा और एक ब्रह्म अखंडरूप रहेगा, तब फिर ब्रह्मसे सब उत्पन्न होंवेंगे 'जल-तरंगन्याय' ऐसे वेद गावते हैं । याहीते तुम सत्य न्यायसे देखो भाई, ऐसे ब्रह्मज्ञानसे अपना जन्म मरण रहटा कैसा छूटेगा ! इसी ज्ञानसे फिर होवेहीगा ? देखो जन्म जैसे छोटे छोटे अज्ञ बालकको 'बागुल बाबा बडा जटाधारी बाबा आया है, तेरेको झोलीमें डालूंगी, चुप रह ।' ऐसी माता डर बतावती है और वह बालक नाहक डरता है । ऐसेही सब अज्ञानी मनुष्यलोग ब्रह्मज्ञानी राजाओंके नाना जड कर्मोंको डरते हैं। और ब्राह्मणादिक गुरुवोंकी सीधासामग्री, वस्त्र धन प्राप्ति आदिक ऐश आरामकी मौज और मान बडाई हो रही है । देखो जिस ब्रह्मज्ञानका परिणाम फिर गर्भवास दुःख, तो उसी ज्ञान-प्राप्तिके कर्ममार्गकी प्रथम नेव कितनी मजबूत रहेगी विचार तो करो !

ब्राह्मण बोले:--आगे बडे बडे विद्वान्, तपस्वी, पराक्रमी नीतिसेचलनेवाले ब्राह्मण बहुत थे परन्तु अब वर्तमानमें वैसे क्यों नहीं दीखते ? और कहीं होंगे तो बहुत ही कम, इसका कारण कहो भला क्या है ?

सुधारक बोला:—शास्त्री महाराज, तुम चुप चाप ही सुन लेव, इसीका उत्तर मैं देता हूं। सुनो विप्रजी, पूरबमें पचीस तीस बरसलों पुत्रका विवाह नहीं करते थे। परन्तु छोकडोंके गुडियोंके खेल माफिक अब वर्तमानमें आठ दश बरसका लडका और पांच छः बरसकी लडकी इनका विवाह हो रहा है। और बारह तेरह बरसकी लडकी पुत्रकी माता बन जाती है क्या आश्चर्य कहैं। इसीते पुत्र, बहू और नाती इत्यादिक सबको शक्तिका रोग लगा। विद्या नहीं, पुरुषार्थ नहीं, बल नहीं क्यों कि बालपनमें पुत्रका ब्याह करनेका मा बापको बडा उत्सव और आनन्द! विषय लंपट मा बाप, इसीते छोकडेको भी वही फंद शिखाया। ताते ऐसे विषय बावरे. विषय लंपट, अल्पविद्या घमंड बहुत, ब्राह्मणोंको देखते ही सकल वर्णके लोग नमस्कार दंडवत करे, पांव परे, आदर, मान दे. देवता समान मान, भोजनकी सीधा सामग्री पहुं-चाकर, पूजा भेंट चढावे इत्यादि सब व्यवहार उत्तम या पापरूप! क्या कहते हो? देखो. आगे ऋषि, मुनि आदिक ब्राह्मण उपनयन कहिये जनेउ कर, उसी संस्कारसे शूद्रका द्विज बनाय उपरांत बारह वा चौबीस बरसतक ब्रह्मचर्य व्रत धार, गुरुके पास वेदविद्या पढते थे, परंतु तुम सांप्रतके ब्राह्मणोंने नीति छोड दिई; याते धर्म उठ गया। तुम स्वतः विवाहमें लडकी बेचकर उसका द्रव्य खाते हो। पांव मोजा और बूट चढाय; क्रिस्तान लोगोंके साथ कुर्सीपर

बैठ, टेबल उपर मद्य, मांस, बिस्कुट, डबल रोटियां अण्डा वगैरह खानेमें कोई कोई अंग्रेजी विद्या पढंत वकील आदिक ब्राह्मण बडे चतुर ही जानो ! सब अठराह प्रकारकी जात बननेको मूलमें नाना व्यभिचार तुमारेही क्यों कि, ब्राह्मण गङ्गारूप, पवित्र दोष रखनेको कहीं जगाही नहीं ! हमारे चरण पखार अंगुष्ठके तीर्थ लियेसे सब शुद्ध होजाते हैं, हमारेको शुद्ध करनेवाला है कौन ? ऐसी पूर्वापर चली आई सम्प्रदायकी छाप तुमहीं लोगोंने बैठाय दी है परन्तु ऐसा अंधियारा कब तक चलेगा ? अब लोग हुशियार भये लिखना पढना बढ गया । तुम्हारा भिक्षुकी धंदा डूबा ही जानो, इसीका कारण केवल तुमारे ही अशुद्ध कर्म, पूरबमें तुमारे खान-दान ब्राह्मणोंकी शक्ति, तप सामर्थ, विद्याबल, चातुरी, पुरुषार्थ कैसा था उधर जरा निगाह तो करो ? केवल वाघका चमडा ओढे मेंढा मत बनो ! तुमारी जातिमें अन्य जातिवत् धर्म पंचाइत नहीं देख पडती ! व्यभिचार इत्यादि निषेध कर्ममें अशौच्य कहिये जाति बाहर रखना बहुत ही कम ! 'हम करे सो कायदा परंतु' वे अनीतिके व्यवहार सब समझके अब अगल ही धरदेव देखो ।

"सत्यमेव जयते नानृतं" इति श्रुतिः

इस श्रुति प्रमाणसे सदोदित सर्वकाल सत्यहीसे जय होती है । याहीते ऐसे फंद फरफंदसे कभी यश मिलेगा न पूरा पडेगा । केवल स्त्री पुत्रादि कुटुंब रक्षणके आसक्तिरूप नाना ढोंग चतुरा-

ईके मार्ग सब जानते हैं। 'लोभमूलानि पापानि' पापका मुख्य बाप लोभ है। देखो, आखिर तुम्हारा कहीं मान न रहने से परिश्रम किये बिना अन्न मिलनेकी भी मुशकिल आय पडेगी, ताते मेरे अज्ञानके कहनेपर लक्ष देव। सदाचरण और पूरा विरक्त ब्रह्मचर्य व्रत धार पूर्वके ब्राह्मणवत् शुद्ध चाऊसे चालोगे कि कोरेही रहोगे ?

ब्राह्मण बोलेः-हम कृमि लोगोंको कौन से कर्म आचार से कार्य होगा, सो शास्त्री महाराज ! आपही कृपा करके कहो। देखो ये सुधारकबाबा बडी कडी बाते बोलता है।

शास्त्री बाबा बोलेः- विप्रजी, पूरा विचार करके देखोगे तो ये सुधारक बाबाका कहना कदाचित झूँठ नहीं ऐसा तुम्हारे ध्यानमें आवेगा। अच्छा अब सुनो, जो बाहर के कर्म से देह शुद्ध नहीं है तो अन्दर चित्त शुद्ध कैसा होवेगा ? याहीते प्रथम नेव जमानेके निमित्त आपने वर्ण आश्रम कर्म करना ही उचित है। स्नान, संध्या, पाषाणप्रतिमादिक पूजा, जप, तर्पण बलिवैश्वदेव, वेद शास्त्रादिक पढना ये नित्यकर्म और श्रावणी, श्राद्ध, कुलाचार लोकाचार त्यौहार बार सब शुद्ध आचरादिक नैमित्तिककर्म; देवप्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति. विद्याप्राप्ति इत्यादिक शुभ इच्छासे करनेका सब काम्यकर्म; और प्रायश्चित कर्म आदिक सब शुद्ध कर्म करना ही चाहिये। कर्माचारी मनुष्य चोरी, मार-

पीट, हिंसा, व्यभिचार, मद्य मांस सेवन, परस्त्री संभोगादिक विषय आसक्ति इत्यादि सब निषेध पापकर्मसे सदोदित डरता ही रहेगा। और एक अपनी स्त्रीसे संभोग, सत्य भाषण, सांची चाल, सब पर दया, प्रारब्धसे मिले हुये द्रव्य वस्त्रादिकोंमें संतोष वृत्ति, ऐसे सब शुद्ध चालसे वर्तेगा ताते वह कर्मिष्ठ ब्राह्मण अथवा कोई शुद्ध चालसे चलनेवाला मनुष्य व्यभिचारी, चोर, कपटी, विद्याहीन, ऐसे मनुष्यसे श्रेष्ठ ही होनेवाला है। अनन्तर नाम स्मरण, तीर्थ, व्रत, बडे बड़े देवस्थानके दर्शन इत्यादि और शुभ कर्म करे। आखिर ज्ञान, चतुराई, विमलमति, सभामें धीरज इत्यादि गुण प्राप्त होने निमित्त अपनेसे शुद्ध चाल चलनेवाले सज्जन चैतन्य मनुष्योंकी संगति करो क्योंकि, साधारण संसार कर्ममें भी कोई विद्या, कला इत्यादि चतुराई प्राप्त होनेको चैतन्य मनुष्य गुरुकी सहायता लगती है। तो ज्ञान प्राप्तिके लिये कोई सज्जन, साधु, संत और अन्तमें सद्‌गुरु रूप मनुष्यकी सहायता ले उनकी संगतिसे शुद्ध होना चाहिये।

दृष्टांतः--एक जादूमंत्र जाननेवाला मनुष्य, एक समय किसी मनुष्यका भूत झाडने लगा, तब मुँह से यों कहे आकाश बांधू, पाताल बांधू, पाताल बांधू, मेरु बांधू, सुमेरु बांधू. भूत बांधू. जादू बांधू, टोना बांधू, इत्यादि बरबर चली थी। इतनेमें घर बाहर निकल, उसीकी स्त्रीने एक लात उसके पीठपर मारी

और कहती है, जले तुम्हारे पुरुषार्थ ! आकाश पाताल बांधने को तयार हुए हो परन्तु अपना घास का मकान टूटके चूता है, ( और छोकडे भीजके जाडेके मारे मरते हैं, उतनी झोपडी नहीं तुम्हारे से बांधी जाती ? धिक्कार है। थूक तुम्हारी अकिल पर ! इसी प्रकार साढे तीन हाथकी झोपडी जो मनुष्य देहहै उसीमें दश इंद्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारद्वारा देहका सब व्यवहार करनेवाला मैं कौन हूँ ? ये तो जानतेही नहीं, और स्वर्ग: पातालमें ईश्वरको खोजते हो, सो मिले कहांसे ? इसवास्ते देह अभिमान और देहकी आसक्ति जिससे छूटेगी, सो विवेक, विचार, संतोष, लीनतादिक शुद्धगुण प्राप्तिके लिये सत्संग करना चाहिये सुनोः--

अर्ध श्लोक-'पापंतापं च दैन्यं च हरेत् साधुसमागमः'।
पंचीकरण

सारांश-पाप, ताप और दीनता सब सत्संगतिसे दूर होती है। देखो, मनोहरदासजी कहे हैं:--

छंद-"रागद्वेष परिहार मारी तम दूर कर। सज्जनको संगकर दुष्टसंग टारिये ॥

मनोहरमाला प्रथम विश्राम।

याहीते सत्संग अवश्य करके सब दुर्गुण दूर बहावना। कोई जीव मात्रको काया, वाचा, कर्मसे दुःख देना नहीं ! येही मनु-

व्यका गुण आत्मज्ञान प्राप्तिका प्रथम साधन है। जड कर्मसे चित्त थोडासा शुद्ध भी होता है, परंतु झाड माफिक बुद्धि कहुं ओर फैलनेको सत्यसंग ही श्रेष्ठ है। ताते हर दिनमें दो चार घडी अथवा जितना समय मिले उतना सत्संग अवश्य करना। और भक्तोंका चरित्र, ज्ञान बोधिक ग्रंथ आदि सत् शास्त्रोंका अभ्यास करते ही रहना। देखो तुलसीदासजी कहे हैं:—

चौपाई—"अतिशय घर्षण करै जो कोई॥
अनल प्रगट चन्दनते होई॥"

रामायण उत्तरकांड।

ऐसा संतत कोई बरसलों सत्संग चले तो चित्त शुद्ध हो, बुद्धि भी प्रकाशित होवेगी. देखो, तुलसीदासजी और कहे हैं:-

चौपाई-"सुत बित नारि ईर्षना तीनी॥
केहिकी मति इन्ह कृत न मलीनी"॥

रामायण उत्तरकांड।

देखो भाई, नहीं तो ऐसी शुद्ध संगति न मिलनेसे स्त्री, पुत्र, धनादिक इच्छारूप वर्ण आश्रमादिक जड कर्मोंमें मति मलीन हो, फिर पहिले ही ज्ञानसीढीके प्रथम पायडीपर पांव रह जायगा। और मनुष्य देहका पूरा सार्थक न होनेसे मनुष्यजन्म दुष्ट संगतिमें अकारथ खोय, पशु योनिमें जाना पडेगा, और गर्भवासादिक यम दंडका अनेक दुःख सहोगे। याहीते सब इसीपर पूर्ण

ध्यान दे, मनुष्यके शुद्ध गुण, वैराग्य, विवेकादि धारण करनेका मनमें बडा खुटका रख, दृढतासे शुद्ध कर्ममें ही लगे रहैं और अति प्रयत्नसे कभी सत्संग न छोडे।

विदूषक बोलाः-देखो शास्त्री महाराज! सकाम कर्ममें फँसके नानाव्यंजन मिष्टान्न खानेको ललचाये; ये प्रथम साधनाके कर्मिष्ठ ब्राह्मण लोग सत्संग, सत् विचारादिके केवल भूसा समान ज्वारीकी रोटी खानेको कैसे खुशी होंगे? ऐसे हठी लोगोंकेपास तुम्हारा उपदेश मानो पत्थरपर बीज बोना है। जामने और हरियावनेकी आशा बहुतही कम नहीं क्या? ऐसा विदूषक बोले बाद सब चले गये और चित्रपट गिराया

## तरंग चौथा।

### (उपासना और भक्तिमार्ग)

प्रारंभमें विदूषक चित्रपट खोलकर बाहर निकल आया।

विदूषक बोलाः-जिसका नाम नहीं, रूप नहीं, गुण नहीं, गांवकाभी ठिकाना नही, सो ईश्वर तोभी काहेका? कैसे बोलते हैं, राम राम, कृष्ण कृष्ण, हरी हरी! परंतु आराम पाया कौन? कालेपना छूटा किसका? और हारे तोभी क्या? वाहियात हल्ला कल्ला मचावना!

इतनेमें तुलसीकी माला डाले हुए वैष्णव भक्त आये। वैष्णव भक्त बोलेः-कौन है रे, हमारे रामकृष्णकी निंदा कर-

नेवाला ? देखो, बडे बडे साधुओंके वचन प्रमाण हैं । तुलसी-दासजी कहे हैं:–

चौपाई–"भजेउ सुरामनाम भवचापू ॥
भव भय भंजन नामप्रतापू" ॥
दोहा-"रामनाम मणि दीप धरु" जीह देहरी द्वार
तुलसी भीतर बाहिरौ, जो चाहसि उजियार
"नाम उधार अमितखल, वेद विदित गुण गाय"।

रामायण बालकांड ।

इसी प्रमाण सुन्दरदासजी भी कहे हैं:--

चौपाई–"राम मन्त्र सबही ततसारा ॥
और आहि जगके व्यौहारा ॥
दोहा-'राम भजन सेवा सुकृत यह सौदा करिलेय'

सुन्दर विलास काव्य ।

देखो, फिरभी तुलसीदासजी ऐसा और कहे हैं:--

दोहा–"रामचंद्रके भजन बिनु, जो चहपदनिर्वान।
ज्ञानवान अपि सोपि नर, पशु बिनपूछ बिषाण"
"जे हरि कथा न कराहिं रति,तिनकेहृदयपाषाण"

रामायण उत्तरकांड ।

थे विदूषक वंदर नाहक बकवाद करनाही जानता है। देखो, नाम प्रतापसें, माया जालरूप कालापना धोय रामरूप

प्रेम सुखधाम आराम पाय, बहुतेरे मुक्त भये हैं । धन्य वह प्रत्यक्ष भवसागर तरणी नाम नौका और धन्य वे प्रेमी भक्त ।

इतनेमें एक पटेल आया ।

पटेल बोलाः--क्यों माला डाले बाबा; तुम काष्ठ, पाषाण धातु, मृत्तिका, कागजरूप चित्र वा तसवीर, पींढा या भीतप, चन्दनसे लिखी मूर्ति, बालू और कांच, ये अष्ट प्रतिम मूर्तिको देवता मानते हो परन्तु वे तुमको ज्ञान बोध देतेही होंगे ? कभी स्वप्नमें तोभी भेंट भई थी । देखो वही तुलसीदासजी कहे हैं:--

चौपाई--"आदि अन्त कोउ राम न पावा ॥
मति अनुमान निगम अस गावा ॥"

रामायण बालकांड ।

और वही सुन्दरदासजी कहे हैं--

चौपाई-"कहूं न दीसै ठौर न ठाउँ ॥
ताको धरिये केहि विधि नाउँ ॥"

और छंद-"देह जड देवलमें आतम चेतन देव । याहीको समुझि करी ज्ञान समुद्र ।
यासो मन लाइये ॥"

और श्लोक-"नानशास्त्रंपठँल्लोको, नानादैव-

तपूजनम् । आत्मज्ञानं न जानाति
सर्वं कर्म निरर्थकम् ॥"

सारांश, राम, कृष्णका नाम रटते रटते जिह्वा और कंठ सूख जाता है, और झांझ मंजीरा बजाय बजाय चूरा हो गये वह राम तो भी कौन ? ऐसा ज्ञान तलाश क्यों नहीं लगावते हो ?

वैष्णवभक्त बोले--वाहजी पटेल, तुम्हारे कहनेसे ऐसा दिखात है कि, तुम निर्गुण मतको मानते हो। कबीर आदिक भक्तोंने निर्गुणकाही वर्णन किया हैं परन्तु निर्गुण या सगुणमें कुछ भेद नहीं। देखो तुलसीदासजी कहे हैं:--

चौपाई--"अगुण अरूप अलखअज जोई ॥
भक्त प्रेमवश सगुण सो होई ॥"
और "व्यापक विश्वरूप भगवाना ॥
तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥"
और 'विष्णु जो सुरहित नरतनु धारी ॥
ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी ॥"

रामायण बालकांड।

तात्पर्य ऐसा है, क्षीर सागरमें शेषपर शयन करनेवाले महाविष्णु नारायण भक्त और देवताओंकी रक्षाकर, दुष्ट दैत्योंको संहार और अज्ञानी जड जीवोंको भक्तिमार्गमें लगाते हेतु राम

कृष्णादि अवतार धार, गुरुरूपसे जगतमें आये हैं । वह अयोनि संभव अर्थात् स्वयम्भू उत्पन्न भये हैं । देखो पटेल, जैसा जल और बर्फ अथवा पिघला और थीजा हुआ घी नाममात्र दो परन्तु वस्तु एकही है । तैसा निर्गुण और सगुण नाम दो परन्तु वस्तु तो एक, क्यों ऐसा ही है ?

पटेल बोला:- वैष्णव भक्तजी देखो; राम, कृष्ण, परशुराम, व मन ये अवतार मनुष्यरूप थे, और मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह ये आधे मनुष्य और आधे पशुवत् थे । परन्तु जैसा एक सीत अंगुरीसे दबाय सब भातका कच्चा या पकापना देखते हैं । इसी न्यायसे देखोगे तो जैसे दूसरे सब मनुष्य स्त्रियोंके गर्भमें रहके योनिद्वारा जन्म लेते हैं तैसेही राम, कृष्णादि अवतारी देव कौसल्या, देवकी आदिक स्त्रियोंके गर्भमें रहके जन्म लिये हैं तो उनोंको अयोनिसंभव वा स्वयम्भू मानना तो भी कैसा ? ऐसेही शुक, अष्टावक्र दत्तात्रेय आदिक भक्तोंने गर्भमेंही रहिके ब्रह्मज्ञानका कथन किये हैं, और बाहर आनेपर वही ब्रह्मज्ञानका उपदेश जगतको किया है इस वास्ते भक्त ब्रह्मज्ञानीभी हुआ तो फिर फिर गर्भवासमें जन्म लेताही है । ताते उपासना और भक्तिका माहात्म्य सब वृथाही दीखता है ! देखो भक्तमालमें ऐसा वर्णन है कि, प्रह्लाद पूर भगवत्भक्त परंतु उसीको फिर जन्म अंगदका हुवा, अंगदका उद्धवका नामा और दक्षिणकी तरफ नामाकाही तुकाराम अवतार ऐसा

भक्ति विजय ग्रंथमें कहते हैं ताते ऐसे ज्ञाता भक्त बारबार गर्भवास दुःख भोगतेही आये हैं । देखो जब भक्त अपने ही तृप्त या मुक्त नहीं होते तब दूसरेको तृप्त या मुक्त कैसे करेंगे ? जो अपनाही अंधा या गूंगा है सो दूसरेको आँखि और वाचा कैसे देवेगा ? अच्छा वे अवतार और भक्त सब चैतन्य चलते बोलते तोभी थे परंतु अब पंचायतन कहिये विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी ये पंच देवतोंकी उपासना धातु पाषाण मूर्तिपूजा आदिक चली है । बद्रीनाथ, रामनाथ, द्वारकानाथभी पाषाणकेही बैठाये हैं । जगन्नाथ बौद्ध अवतार कहते हैं परन्तु चंदनके लकडेकाही । न चले, न हाले न बोले ! भादवमें गणेश चौथ या हाथपर महादेवके लिंग बनाते हैं सो सब मट्टीकेही । कहीं लिंग वालु या कांचके धरे हैं । चित्र, तसबीर इत्यादि देवता सब कागजरूप; अनंत रेशमकाही; श्रावणीमें ऋषि पूजन सुपारीका, निशान गादी, पादुका, कबर, पोथी आदिक पूजा; सोना, चांदी, आदिक लछिमी पूजा; दीपक, हतियार आदिक पूजा; गऊ, सूकर, नाग आदिक मूर्ख जडबुद्धि पशुओंकी पूजा; बट, पीपर, गूलर, तुलसी. आंवरा आदिक झाडोंकी पूजा; गोबरकी पूजा; इसीसे और भैरव, खंडेराव आदिक तैंतीस कोटी देवतोकी पूजा न्यारीही, अग्निकी पूजा, जलकी पूजा, पर्वतकी पूजा. सारांश सकल पृथ्वीके जड पदार्थ विराटरूप ईश्वरके नाना

अवयव मान कर पूजाविधि चली है। देखो–"मूर्खस्य प्रतिमा पूजा" कहिये, केवल विषयलंपट लोगोंका लक्ष विषयसे उचटे और कोई एक जगतका कर्ता ईश्वर है उसपर लगे, इस हेतुसे सब पाषाण प्रतिमादिक मूर्तियोंको ईश्वररूप थाप दिये हैं। और बडे बडे देव मंदिर बनवाय, पवित्र भूमिका देवस्थान ठहराये हैं। क्योंकि, विषयासक्त लोग उसी जगह तोभी देवतोंका बासा जान, कुछ डर मान, शुद्धि चालसे चलेंगे। परंतु क्योंजी अज्ञान और बासनासे फिर फिर जन्मप्राप्ति ऐसा कहा है, तो निर्गुणरूप विष्णु भगवान् पूर्ण प्रकाशरूप परंतु उनमेंभी अज्ञानका बीज है ही? देखो जब अवतारी देवता और उनके पूर्ण वैष्णव भक्त गर्भवास दुःख सहते हैं, तब तुम भक्तोंकी क्या स्थिति होगी?

वैष्णव भक्त बोलेः–देखो पटेल ईश्वरकी लीला अपरंपार है। सुनो तुलसीदासजी कहे हैं:--

चौपाई--"जलचर थलचर नभचर नाना॥
जे जडचेतन जीव जहाना॥"

रामायण बालकांड.

अथवा

अर्ध श्लोक–"सर्वभूतस्थमात्मानं
सर्वभूतानि चात्मनि॥

भगवद्गीता। अ० ६ श्लोक २९।

सारांश ऐसा है, ईश्वर जड चैतन्यमें सब जगह पूर्ण भरा है ताते कोई देवपर भाव, भक्ति, विश्वास और प्रेम रखे तो ईश्वर प्राप्ति सहजही होती है । देखो, तुलसीदासजी कहे हैं:—

दोहा–"बिनु विश्वास भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम ॥"

रामायण उत्तरकाण्ड

और अर्ध श्लोक—"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः"

भगवद्गीता अ० ६ श्लोक २७ ।

इसीते मुख्य वेद, शास्त्र और गुरु पर श्रद्धा तथा विश्वास चाहिये । विश्वास और प्रेमसेही ईश्वरको दया आवेगी । मुक्त होके करना तो भी क्या है ? सुनो तुलसीदासजी कहे हैं:—

दोहा–"नाथ बरमांगौ यहि, मोहि कृपाकरि देहु ।
जन्म जन्म प्रभुपद कमल, कबहुं घटे जनि नेहु ॥"

रामायण उत्तरकाण्ड

दोहा–"अर्थनधर्मन कामरुचि, गतिनचहौंनिर्बान
जन्म जन्म रति रामपद, यह बरदान न आन ॥"

रामायण अयोध्याकाण्ड

मुख्य रामचरणमें लीन हो, भक्ति करना सबसे श्रेष्ठ है । देखो नवधा भक्ति के अंग हैं:—

श्लोक—"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥"
भागवत प्रमाण

सुनो, श्रवण भक्तिसे परीक्षित राजा, कीर्तनसे नारद, नाम-स्मरणसे ध्रुव प्रहलाद, चरण सेवासे लक्ष्मी, अर्चनसे बलिराजा, वंदनासे अक्रूर, दासतासे गरुड, हनुमान सखापनसे अर्जुन, उद्धव और आत्मनिवेदनसे मयूरध्वज इत्यादिक वैष्णव भक्त नवधा भक्ति प्रभावसे ईश्वर पदमें अनन्य लीन हुए हैं। ताते बडे प्रेमसे अवतारादि लीला गाना, भजन, पूजन, कीर्तन करना, देखो सुन्दरदासजी कहे हैं:—

छप्पै—"कबहुं हंसि उठि नृत्य करे रोवन फिर लागे
कबहुंक गद्गद कंठ शब्द निकसे नाहिं आगे ॥
कबहुंक हृदय उमंग बहुत ऊंचे स्वर गावे ॥
कबहुंक ह्वै मुख मौन गगन ऐसे रहिजावे ॥
चित्त बित्त हरिसों लग्यो सावधान कैसे रहै ॥
यह प्रेमलच्छनाभक्तिहैशिष्य सुनहु सुन्दर कहै ॥
ज्ञान समुद्र ।

सारांश ऐसा है, पंसेव छूट अंग कंपने, सब गात पुलकित होने, गद्गद हो कंठ रुकजाने, दुःख और प्रेममिश्रित नयनसे आंसू गिरने, करुणापर भजनसे ऊँचे स्वर गाने और नाचने, विषय

तिरस्कारसे बैराग रखने, एक देवता छोड कुछ भी प्रिय न लगने, अन्तमें प्रेमानंद अथवा प्रेममें देहका भान भूल जाने ऐसे अष्टसात्विक भाव आय फुरते हैं। इसी प्रकार प्रेममें धुंध, मस्त गलतान पडे हैं। देखो, इत्यादिक प्रेममें जो सुख है, सो मुक्तिमें है ही नहीं, फिर मुक्ति होके भी क्या करना है? जन्म लिये तो डर कौनसी? हुवा क्या? देखो अवतारी देवता और पूर्ण वैष्णव भक्त कोई स्थितिमें रहे, उन्होंको शरीरका दुःख है ही नहीं, फिर गर्भवास दुःख कहांसे होय?

पटेल बोला:-वैष्णव भक्तजी, तुम प्रथम भक्तिको विश्वास चाहिये कहते हो। परन्तु विश्वाससे मिट्टीको शकर, गारको हीरा, विषको अमृत, अग्निको जल और सकल झाडोंको कल्पतरु मान लिये तो वैसा हो जावेगा क्या? जैसा बजारमें साधारण एक पैसा खर्च कर, मिट्टीका घडा लेने वखत चार चार बेर बजाय बजाय लेते हैं; तैसी पूरी पारख नित्य या सत्य वस्तुकी करे बिना विश्वाससे कोई भी जड वस्तु देवता मान लेना, ये अन्धेका काम है, पारखी आंखोंवालेका नहीं। ताते ये विश्वास नहीं परन्तु केवल विश्वासघातही जानो। देखो, तुलसीदासजी रामजीके पास जन्म जन्म प्रेमभक्ति मांगते हैं, परन्तु वह राम तो भी कौन? जड पाषाण मूर्त्तिके पास मांगते हैं ऐसा कहना, तो उसीके अंगमें प्रेमभक्ति देनेकी सामर्थ्य है नहीं। सुनो तुलसीदासजी ही कहे हैं:-

चौपाई—"सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा ॥
दीप शिखा सोई परचण्डा ॥
परम प्रकाश सरूप दिन राती ॥
नहिं कछु चाहिये दिया घृत बाती ॥"

रामायण उत्तरकाण्ड.

तैसेही सुंदरदासजीभी कहे हैं:--

नाराच छन्द--"मरीचिका समान शुभ्र, और लक्ष जानिये ॥ झलामलं समस्त विश्व, तेजमैं बखानिये ॥"

ज्ञान समुद्र ।

इस प्रकार ध्यानकी विशेष एकाग्रतासे बडा प्रचंड अंगुष्ठ-मात्र प्रकाश हृदयमें दीखता है। परन्तु वह ईश्वर न होय तो देहरूप दर्पणमें जीवकी सहायतासे भासमात्र सूक्ष्म देहका प्रति-बिंब स्वरूप एक मूर्ति खडी होती है । उसी निर्गुण रामके अंगमें भी जन्म जन्म सतसंगसे भक्ति प्रेम सुख देनेकी सामर्थ्य है नहीं । याते तुलसीदासादिक वैष्णवभक्तोंको जन्म जन्ममें भक्ति प्रेमका सत्संग मिलेगा। कैसा इसी देहमें अविनाशी, चैतन्य वा ज्ञानमात्र जीवरूप न जाननेसे अवतारी देवता और सर्व वैष्णव भक्तोंकी केवल देहभासमें स्थिति हो, जन्म मरण छूटनेकी सांच भक्ति मिलना दुर्लभ ही दीखती है। ऐसा ज्ञानप्राप्तिका

मनुष्यदेह नाहक जड धोखेमें गमाय; पशु, पंछी आदिक अज्ञानी जड पशुयोनिमें वे सब गये, ऐसा क्यों नहीं कहना भला ? उपरांत पशुयोनिमें सत्संग, ज्ञान, विवेक, विचार इत्यादि कहांसे होगा ? ईश्वर प्राप्तिभी दूर रही, मनुष्य देहभी गया, और हकनाहक पशुयोनिमेंही गर्भवास, जन्म, मरण आदिक दुःख भोगनेका प्रसंग आय पडा, ऐसा क्यों नहीं कहना ? देखो, पूरी पारख न कियेसे केवल "विश्वासः फलदायकः" विश्वासही फलदाता जानके भक्ति करै, सो विश्वाससे अपना घातही करलेता है जानो । सब नवधा भक्ति करनेवाले भक्तोंका और तुम्हारे देवतोंका ऐसा परिणाम निकला भला ? सारांश विवेक विचार कर, पूर्ण पारख प्रताप जगाय, चैतन्य भक्तिसे मुक्ति करलेता है, वही मनुष्य पूरा शूरमा है । नहीं तो आखिर सब पशुजन्म पाय, अज्ञान अवस्थामें ही रहेंगे । ताते ऐसी देह प्राप्ति दुःखका घर और सो पशु जन्म दुःसह दुःखका भोग नहीं है । क्या ? इतनेमें एक कीर्तन करनेवाले हरिदास आये ।

हरिदास बोलेः--देखो पटेल, प्रमाण सुनोः:-

श्लोक--"प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः
समाः ॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे, योगभ्र
ष्टोऽभिजायते" ॥

अर्ध श्लोक--"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥"

भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ४१. ४५ ।

अर्थ ऐसा है, जैसा कोई शहरका एक रस्ता पकडके चलेगा तो उस शहरको पहुँचेहीगा । तैसेही नीति, सदाचरण, स्वधर्म, भक्ति आदिक शुद्ध और पुण्यमार्गसे चलनेवाला योगभ्रष्ट पुरुष उत्तम शुद्धकुल और धनवानके घरमें अनेक जन्म धर धरके पिछले संस्कारसे जन्म जन्म ज्यादा ज्ञान बढाय, पूर्ण दशा धार मुक्तरूप परमपदको प्राप्त होता है, देखो, एक साधुने कहा है ।

दोहा--"संत बीज पलटे नहिं, जो जुग होय अनंत ॥
ऊंच नीच घर औतरे, होय सन्तका सन्त ॥"

इसी प्रकार पूजा ज्ञान कमाय, जन्म मरणसे रहित होताही है । फिर मनुष्य जन्म आता नहीं ऐसा कहना ( अजिबात ) गलत है । मनुष्यही केवल मुक्त भये हैं ऐसा नहीं तो हनुमन्त अंगद सुग्रीव आदिक बंदर, जांबवान रीछ, नक्र, गजेन्द्र पशु, गरुड पंछी, शेष सर्प, कागभुशुंड कव्वा, धेनु, मृग ऐसे पशु, पंछी आदिक योनियोंमें जन्म ले मुक्त भये हैं- देखो कहा है--

श्लोक--"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"

भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ८ ।

भावार्थ ऐसा है, केवल धर्म नीति कायम रहै। सन्त, ब्राह्मणोंका शुद्ध मार्ग चले, राक्षसादि तामसी, अधर्मी, महानीच जीवोंको दंड होवै, इसी सेतु जुगजुगमें अवतार हुए हैं। तुम फिर मनुष्य जन्म आताही नहीं ऐसा कैसा कहते हो ? ये कितनी अज्ञान कम समुझ है ?

पटेल बोला:–देखो हरिदास महाराज, शास्त्रप्रतीति, गुरुप्रतीति और आत्मप्रतीति, ये तीन प्रमाणसे ठहरे वही बात सच्ची है केवल शास्त्रपर ही विश्वास रखनेसे कुछ भी कार्य न होगा। प्रथम मूल शहर कौनसा, और उसीका रस्ता चलना कैसा ? याहीका पूरा सत्य न्यायसे ठिकाना लगना चाहिये। मूल बडा शहर कहिये परमात्मा वा परब्रह्म, परन्तु वह अनिर्वाच्य, कुछ वाचासे वर्णन करनेमें आताही नहीं। उसीको ना गुण ना रूप, ना आकार, मन, बुद्धि, लक्षकी गति चलती ही नहीं। देखो, निश्चलदासदी कहे हैं:–

दोहा–"अन्तर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर॥
विभु नभसम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नाहिं दूर"॥
विचार सागर चतुर्थ तरंग।

तात्पर्य परब्रह्म या परमात्मा, स्थावर, जंगम, चर, अचर सकल विश्वमें ओतप्रोत भरा है। मूल बडे शहरका ये स्वरूप है अब तुम जाओगे तो भी किस मार्गसे ? उसी परमात्माके प्राप्ति विना

मुक्ति नहीं होती ऐसा कहे हैं । देखो, सो परमात्मा तो भी कौन ? तो पंचतत्त्वोंकी देह, दश इंद्रिय, पंचप्राण, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, पंच विषय, सत्त्व रज तम ये तीन गुण, इत्यादिक सकल दृश्य पदार्थोंका मैं साक्षी या देखनेवाला दृश्य पदार्थ नहीं, इसी प्रकार, तुर्यावस्थामें ठहराया है । अंतमें अपना स्वरूप क्या है उसका ठौर ठिकाना पूरा लगा नहीं । सब ' सर्वं खल्विदं ब्रह्म ' इस श्रुति प्रमाणसें सकल विश्व व्यापक साक्षी ब्रह्मरूप मैं हूं ऐसा सिद्ध किया परन्तु साक्षी या ज्ञान अवस्था अब कहां रही ? ज्ञान, अज्ञान, जड चैतन्य सब एकहीमें तो मिलाया और पूर्ण ब्रह्म व्यापक माना । ऐसी तुर्यातीत उन्मनी अवस्था, निर्विकल्प महा आनंदरूप अथवा एक प्रकारसे महा गाफिली, विभ्रम वा त्रिदोष-रूप ज्ञान सिद्धांत वेद शास्त्र कर्ता आदिक बडे बडे महात्मा लोगोंने किया है । वहां कार्य कारण भाव कुछ रहताही नहीं, सब सृष्टि सच्चिदानंद अखंड एक रस ब्रह्मरूप भासती है ऐसा कहते हैं । परन्तु किसको सृष्टि एकरूप भासती और आनंद किसको होता याका खोज नहीं लगाया । तते एक अटल अचल स्थितिका स्थान न मिला, तब परमात्मा अनंत सर्वत्र व्यापक ठहराया है । देखो सुषुप्ति अवस्था वा महा घोर निद्रासे फिर स्वप्न फुरता है, तैसे ही सच्चिदानंदके सहज स्वभावसे फुरनारूप जगत् उपजा ' मेघ बूंद न्हाय ' जैसे बादलसे जलके बूंद गिरते हैं तैसे ब्रह्म-

रूप बादलसे अनेक बूंदरूप जीव उपजते हैं। इसीसे क्या कार्य कारण भाव नाश हुआ ! एक जड चैतन्य मिश्रित गोला तो बनाया। इसी प्रकार स्वतः स्वभावरूप सनातन उत्पत्तिका रोग ईश्वर भक्तिमें न छूटनेसे 'रहट घडी न्याय' जन्म मरणरूप चौरासी लक्ष योनियोंके चक्करमें सब जीव पडेही रहे, जीवोंको निरुपाधि स्थिर जगा मिलीही नहीं। इसी वास्ते ऐसा जड चैतन्य ? मिश्रित परमात्मापद न्यायमें भूल शहरही न ठहरा, तो ईश्वर प्राप्तिके कर्म उपासना ज्ञानादि मार्ग अंतमें सब निष्फल होजावेंगे। यह कितना आश्चर्य कहना भला ! जैसा आकाशमें एक वृक्ष उपजा, उसको बडे बडे मीठे फल लगे, और बांझपुत्रने उसी वृक्ष पर चढके सब फल तो तोड खाये, ये जैसा आश्चर्य है तैसेही ब्रह्म प्राप्तिके सकल मार्ग कपोलकल्पना झूठ जड धोखा ठहरे नहीं भला ? जैसा लोहा बहुत बरस मिट्टीमें पडा रहनेसे मोरचाके मारे नापत्ता हो, मिट्टीही बन जाता है। अथवा जैसा बहुत दिनका पुराना लकडा अंदर घुन लगनेसे नापत्ता हो पिसानही बन जाता है तद्वत् मनुष्य देहमें नाना साधन कमाय, जड चैतन्य एक रूप ब्रह्म अग्नि लगनेसे जीवका ज्ञान घर जल गया; और जीव तेजहीन, जड, आसक्त बन, लोह मिट्टीवत् वा काष्ठ पिसानवत्, पशु पंछी आदिक योनिमें जाके जड अज्ञान घर जीवने बनाया ताते फिर मनुष्य देह मिलनेका साधन सत्संग, विचारादिक रहाही नहीं तो,

फिर मनुष्य देह पावै कहांसे ? मनुष्यदेही ज्ञानी मनुष्योंकी ऐसी स्थिति होती है, तो फिर पशु आदिक योनिमें ज्ञान होनेकाही नहीं । पशु आदिक योनिमें ज्ञान कमाय मुक्त भये हैं ऐसा कहते हैं सो सब रोचकवानी हैं, यथार्थ न्याय की नहीं देख पडतीं. सारांश पूरा विचार कर देखोगे तो मनुष्य जन्म फिर उत्तम कुलमें प्राप्त होता है, और अनेक जन्म लेते लेते ज्ञानी बनके मुक्त होता है, ऐसा हमारे न्यायविचारमें तो नहीं आता. फिर मानना तो भी कैसा ? कदाचित् फिर भी मनुष्य या संतका संत अवतारका मनुष्य होता है ऐसाही माना जाय तो अगले और पिछले जन्मके माता पिता आदिक प्रत्यक्ष अनुभव बतानेवाला संत मिलनेको दुर्मिल दीखता है । जो कोई ऐसा अनुभव दिखावै तो क्यों न मानेंगे केवल अनुमान तर्क उठाना किस प्रकारसे सांच मानैं सो कहो तो सही ?

विदूषक बोला:--वाहवाजी वाह भरोसे की भैंस पडा वियानी ऐसाही उत्तम ब्रह्मज्ञानसे फिर मनुष्यको पशु जन्म दुःख वा अनेक बार गर्भवास दुःख अरेरेरे ! जगत्में ब्रह्मज्ञानी वैद्योंकी बडी कीर्ति परन्तु जीवोंको विषरूप उपदेश देके धोखेसे ही मारते हैं जानो ! महा निंद्य कर्म !

हरिदास बोलेः—देखो पटेल, जगतमें एक राजा, एक धनवान्. एक भिखारी, एक जन्मसे शीतल, एक जन्मसे क्रोधी, एक संसारी, एक त्यागी; एक सुखी, एक दुःखी, एक तेजबुद्धि, एक जड बुद्धिवाला, कोई कोढी अन्धा, लूला, लंगडा, बहिरा, लूंगा ठूंठ आदिक अंगसे हीन, एक रोगी एक निरोगी, कोई सात्त्विक, राजसी, तामसी इत्यादि नाना प्रकारके मनुष्य में न्यारे न्यारे गुण रहते हैं। सो पिछले जन्म कर्मका संचित संस्कार फल नहीं तो क्या है ? तुम कैसे कहते हो, मनुष्य को फिर मनुष्य जन्म आताही नहीं !

पटेल बोलाः–देखो हरिदास बाबा, सृष्टिमें नाना विद्या, नाना कला, इत्यादिक गुण प्रगट करनेवाला और स्वतः ज्ञान का प्रकाश कर देहरूप जड बंधन तोडने वाला, सर्व उत्पत्तिका आदि कारण मनुष्य पांचवीं ज्ञान खानी है । चार खानियोंमें केवल आहार, निद्रा, भय, मैथुन, आच्छादन और मोह इतनेही षट् धर्मका गुण जाननेकी शक्ति है। ताते वे चारों खानी आसक्त जडरूप हैं ? मूल ब्रह्मांडके पंच तत्त्व और जीव ये छः पदार्थ अनादि हैं ? और स्त्रीपुरुषोंके मैथुन प्रसंगसे पैदा हुई मनुष्य खानी, चार अवस्थाके अध्याससे पैदा हुई अन्य चार खानी, वेद, शास्त्र, पुराणादिक बानीका प्रपंच विद्या, कला इत्यादिक सर्व दृश्य प्रपंच व्यवहार प्रवाहरूप सनातन काल से चलाही आवता है । देखो एक साधुने कहा हैः—

**चौपाई–"कुसवारी ( कीट ) जस गुफा बनावे।**
**द्वार मूंदि बंधन करि लेवे ॥"**

और सुंदरदासजी कहे हैं:—

**दोहा—"अपनी छाया देखिके, कूकर जाने**
**आन ॥ सुन्दर अतिही जोर करी,**
**भूखि मरत है श्वान ॥"**

ज्ञानसमुद्र ।

**और चौपाई—अहं सदोदित सदा प्रकाशा।**
**साक्षी अहं सर्वमँह वासा ॥"**

सुंदरविलास काव्य ।

सारांश—प्रथम आरम्भमें जीवको सहज स्वभावसे अहं इच्छा-रूप जड पंचतत्त्वोंका खेल या लीला करनेका स्फुरण हो, तत्त्वोंके आनन्दमें जीव 'श्वान कांच महलवत्' तदाकार भया, अर्थात् ब्रह्मभावना कर, कुसवारी कीटकीनाईं जड मनुष्य देहरूप घर बनाय अपनाही देहमें बंध भया, देखो:—

**"एकोहं बहुस्याम्" ये श्रुतिप्रमाण ॥**

अनन्तर जैसा एक दियासे दूसरे अनेक दियाका उजियाला होता है। तैसेंही आदि पुरुषकी सहज इच्छासे अनेक चार खानीके जीव स्वप्नवत् उत्पन्न हुए हैं। तो जगत् उत्पत्तिका

आदिकारण या प्रथम मूल मनुष्य ही है । इसीते शास्त्रकार आदिक बडे बडे ऋषियोंने कहा है कि, रंगमहल छप्परपलंग, कांचको हंडिय, उत्तम देवता या राजालोगोंकी तसवीरें आदिक, रोशनाई, नरम बिछौना, मेवा मिष्टान्न, पान सुपारी, फुलेल, अर्गजा, नाना फूल आदिक सुगन्धि पदार्थ; उत्तम उत्तम पदार्थोंका षट्रस भोजन; सुहावन श्रृंगार, स्त्रीपुरुष दोनोंभी ताकतवान् और रोगरहित; दोनोंकी शुद्ध प्रीति; उत्तम दिन इत्यादिक प्रकार स्त्रीसंभोग, विलासके वर्णन किये है। जैमिनि केतकी, व्याली, जगपत्ति इत्यादिक सबमें श्रेष्ठ लग्न माने हैं । उसी लग्नसमय गर्भ-स्तम्भन होवेगा तो, कोई राजा पूरा ज्ञानी, शूर अथवा बडे विचक्षण तेजबुद्धिवाला पुरुष निकलेगा, ऐसा कहा है । गर्भस्तम्भनसमय जैसी स्त्री पुरुषोंकी सात्विकी, राजसी, तामसी और शुभ अशुभ गुणसंयुक्त वृत्ति होवेगी तैसेही सात्विकी, राजसी, तामसी, धनवान्, दरिद्री, अंगहीन इत्यादि प्रकार बालकके गुण हो जाते हैं । सुनो एक साधुने कहा है:—

चौपाई—"नाद बिंदु जब गांठी परई ॥
लिलाट रेखाबिधि लिख धरई" ॥

ऐसा कहनेका हेतु भी यही है, इसीके और प्रमाण सुनो, व्यास बीजसे पांडु राजा पांडु रोगी, धृतराष्ट्र अंधा और विदुर सात्विक पैदा हुए ऐसी वर्णन है । ये सब गर्भस्तम्भन समय

वृत्तिका ही खेल है । देखो, रक्त बिन्दु तो एक ही है, परन्तु स्त्री पुरुष और नपुंसक होता है सोभी इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडीका ही फेर है । पुरुषकी इडा और स्त्रीकी पिंगला गर्भस्तम्भन समय रही तो कन्या, पुरुषकी पिंगला और स्त्रीकी इडा रही तो पुरुष और स्त्री पुरुष दोनोंकी सुषुम्ना रही तो कहीं बिरला नपुंसक या हिजडा उत्पन्न होता है । और सुनो, कोई घोडीकी आंखें बांध उसीके आगे उत्तम घोडा खडा रखना और कोई भी साधारण घोडेसे उसी घोडीका प्रसंग होनेपर, आंखें खोले बाद, सामनेके घोडेपर ध्यान गयेसे वैसी ही सूरत शकल हो जाती है, ऐसा कोई लोग जानते भी हैं । बहुत करके मा बापकी सूरतके समान बहु तेरे लडके देखनेमें आते हैं । जैसा सांचा वैसा आकार । मनुष्यसे मनुष्य, पशुसे पशु, पंछीसे पंछी उत्पन्न होते हैं । ऐसा प्रत्यक्ष देखनेमें आता है । इसीका सब विस्तार गर्भावली, कोक शास्त्रादिकमें कहा है, चाहे कोई भी वहां देखकर अपना समाधान कर लेवैं । सारांश, दीपकसे अनेक दीपक अथवा अग्निके अनंत चिनगारे निकलने वत् जीवकी ज्ञानीय कला दूसरा जीव; नाद, बिंदु और जीवन कला संयुक्त देहधारी स्त्री पुरुषके मैथुन कर्मसे प्रथम अनेक मनुष्य उत्पन्न भये हैं, और अभी होते हैं । पूर्व संचितका जन्म संस्कार फल येही है देखो, अनादि मनुष्य परंपरासे जीव गर्भवासमें जरते जरते ही आये हैं ताते अब तेजहीन विषयासक्त हो गये हैं । सुनो तुलसीदासजी कहे हैं:—

दोहा-'भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच'
रामायण बालकाण्ड ।

इस वास्ते जैसी जैसी बालापनसे भली अथवा बुरी संगति मिलेगी, तैसे तैसे शुद्ध अशुद्ध गुण बालककी बुद्धिमें प्रवेश करेंगे । देखो, अशुद्धके शुद्ध और शुद्धके अशुद्ध ऐसे संगतिसे गुण जरूर पलटते हैं । फिर आगे जैसा वही कुसवारी कीट आपकी गुफाको छेद कर, अलग न्यारा हो जाता है, तैसे ही सत्संग प्रभावसे हंस-वत् ' क्षीर नीर न्याय ' अर्थात् जड चैतन्यका मिश्र भाग पारख दृष्टिसे निवेरा कर, सत्य चैतन्य जीवपद गहिके, विवेक द्वारा जड देहकी सब आशा छोड,मनुष्यने भी हंस समान न्यारे ही हो जाना, तभी मनुष्य जन्म सुफल हुवा जानना नहीं भाई !

वैष्णव भक्त बोलेः-देखो, कलि युगमें नाम स्मरण, कीर्तन समान और सुलभ साधन है ही नहीं । निश दिन राम, कृष्ण वा हरि ऐसी धुन लगी रहना चाहिये । राम, कृष्ण, हनुमान, नरसिंह, दत्तात्रेय आदिक अवतारी देवतोंके जन्म उत्सव करै, अवतार लीला रास बनावै, चारों धाम परसे निगुरा कोई न रहे अर्थात् गुरू करै, और गुरूके कहे हुए मंत्रका जाप करै, अंतमें गुरु सेवा कियेसे तो निश्चय मुक्ति मिलेगी ।

पटेल बोलाः-देखो वैष्णव भक्तजी ! केवल अन्न अन्न या जल जल रटनेसे भूख प्यास जायगी क्या ? और द्रव्य द्रव्य कहनेसे

महाजन बनेगा क्या ? जिसका नाम स्मरण करना, उसी देवका खोज या तलाश क्यों नहीं लगावना। एकादशी, सोमवार, प्रदोष आदिक उपवास रहके चारों धाम भी परसे, तोभी जन्म मरण रहटा, कल्पना न मिटनेसे बना ही रहेगा। जो आवागवन मिटावेगा सोई पुरुष धन्य है। राम नवमी गोकुल अष्टमी आदिक अवतारी देवतोंके जन्म दिन रास लीलादिक उत्सव बडे ठाठसे भी किये, तोभी इससे पूरा ज्ञान कैसा प्राप्त होवेगा ? छोकडोंके भुलाईके खेलवत् नहीं तो क्या ? देखो, जैसे छोटे छोटे बालक झूठा ही खेल खेलते हैं। उसमें पुकारते हैं, चलो, उठो, रसोई बन गई, पात्र धरो, सोला पहिनो, पीढापर बैठो, क्या क्या चाहिये सो मांग लेवो। एक कहता है पूरी होना, एक मांगता लड्डू, एक कहै सीरा लावोजी, एक बोलता है नहीं जी तरकारी होता, इत्यादि पदार्थ मांग मांग लेते हैं दूसरा परसनेवाला कहता है ये लेव हुआ अब धीरेसे पावो। एक कहता है पूरन, कितना परसोगे ? उद्गार भी आया। एक पेटपर हाथ फिराने लगा एक बोला बहुत पाया भाई। क्या आजका माल बहुत उमदा और मीठा बनाया था। इत्यादि सब व्यवहार झूठ ही झूठ और भूख वैसी की वैसी बहाल है। तैसे ही भजन, चारों धाम परसना, जन्म लीला, रास उत्सव इत्यादिक आचरण किये परन्तु जन्म मरण भूख, वैसी ही बनी रही, और अपने स्वरूपका अनुभव हुवा ही

नहीं । केवल अन्ध परंपरा उपासना और भक्ति मार्ग चला ही आया दीखता है । अच्छा ये छोडो, परन्तु चैतन्य चलते बोलते गुरु की ' पतिव्रता न्याय ' प्रेमसे सेवा करके मुक्ति मिलेगी ऐसा ही कहा जाय, तो गुरु कौन उसीका खोज है ही नहीं । एक अच्छा अमृत सिद्ध योगादिक मुहूर्त ठहराय खंजिरी, मृदंग, मजीरा, शंख आदिक बाजा बजाय बजाय, मूंडपर एक कपडा ढांक, मुँहसे चेले लोगोंके कानमें फुस, फुस, 'ॐ रामाय नमः' ॐ नमः शिवाय' 'ॐ नमो नारायणाय' 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' आदिक कोई भी एक मंत्रदीक्षा देते हैं । और यों कहते हैं कि, दिल लगाय ये मंत्र निरंतर जपते रहना, प्राण जाय तोभी किसीको कहना नहीं कहोगे तो कान आंखें जायँगी । ऐसा डर बजाय, चेला चेलियोंके पाससे द्रव्य मिलाने वाले बहुत गुरुवा हैं अपना चरणोदक अर्थात् दांवके अंगुष्ठका जल औ महाप्रसाद अर्थात् गुरु भोजन करते समय दश बीस भातके सीत अथवा छोटासा एक ग्रास अन्न खाजाना, इसका बडा माहात्म्य वर्णन किये हैं । परन्तु महाप्रसाद कहिये सत्य ज्ञान बोध ले, उसीपर कायमा होना । और चरणोदक कहिये गुरुपद नित्य वस्तुपर अचल स्थिति होना, ऐसा सच्चा भावार्थ है । और सुनो, गुरु कामी होय तो श्रीकृष्ण अवतार, क्रोधी नरसिंह, लोभी वामन मोही, राम-

चंद्र ऐसे गुरुको प्रत्यक्ष देवतारूप जाने। मूढ बावरा, विषयासक्त कैसा भी गुरु होय गुरुकी निंदा कभी करनाही नहीं और कोई करेगा तो महा घोर नर्कमें जावेगा ऐसी बडी भारी डर बताई है। सर्व प्रकारसे ऐसा पूरा गुरु सेवक आप तरके गुरुको भी तार लेता है, तारण तरण होजाता है ऐसा कहते हैं। अयोध्या माहात्म्यमें ऐसा कहा है कि, कोई बडा प्रेमी गुरुभक्तितत्पर ऐसे सेवकके प्रतापसे गुरुसहित सब अयोध्या वैकुण्ठको चली गई है। यही आधारसे कितनेक साधु लोग मुक्तिके वास्ते अयोध्यामें जा बैठे हैं। ऐसा गुरुसेवाका बडा माहात्म्य वर्णन किया है। ऐसी मन्त्रदीक्षा और गुरुसेवा दोनों प्रकारसे शिष्य लोगोंको मूल धोखा दिये हैं नहीं भला ? सारांश बहुत साधु कहावने वाले प्रपंची साधु, गुरुवा, महाराजा या महन्त बन, एक प्रकारसे कर या खंडणीकीनांई हर बरसमें एक दो रुपैया अथवा ज्यादा द्रव्य शिष्यके पाससे खैंचके अपने लडके बाले स्त्रीका अथवा कुटुम्ब न होय तो अपनेही खाने कपडेकी ऐश आराम भोग रहेहैं। अच्छा, ऐसा पैसा कमाय रातदिन सत्सङ्ग चला है, ऐसी जगा कोई विरलाही देखनेमें आती है देखो, एक साधुने कहा है:—

**दोहा-"गुरु लोभी शिषलालची, दोनोंखेलें दाव।**
**मांझधार नदिया बहे, चढपत्थरकी नाव॥"**

ताते ऐसी गुरुसेवा कहना अथवा देहकी टहल ! ऐसेही गुरुसे मुक्ति मिलेगी ? ये केवल ठगविद्या अथवा ढोंगीमार्ग नहीं तो कौन ? इसीसे आवागमन थोडाही छूटेगा ? देवतोंकी लीला गाना अर्थात् जैसे संसारी लोगोंके विषय वासनाके खेल नहीं तो क्या है ? देखो सुंदरदासजी कहे हैं:—

**छन्द—'सुनत विषयकी बात लहरी विषयकी आवै'**
सुंदर विलास काव्य ।

इसीते विषय लहर ज्यादा ही उत्पन्न होती है नहीं क्या ? भग और लिंग एक ठौर थापके महादेव. बनाया ? अंडरूप शिला और मस्तकमें भगचक्र अकार खोदके शालिग्राम महाविष्णु माना ! येही तो दोनों देवतोंका जगत्में ज्यादा पूजन चला है ! इसीसे विषय बढावना ही दीखता है नहीं भाई ! राधा कृष्ण, लक्ष्मी नारायण, सियाराम, दक्षिणमें विठोबा रखुमाई आदिक शिव शक्ति कहिये स्त्री पुरुषोंकी पूजा ठानी, ये भी एक प्रकारसे विषय बढावनेकी ज्यादा पुष्टि ही जानो ! इसी हेतुसे भजन, पूजन, अवतार लीला अथवा पीछे कही हुई गुरु सेवा आदिक सब खान पान व्यवहार विषय मार्ग निकाला है नहीं क्या ? याते ऐसे विषय मार्गसे चलना इसीको ही सच्ची उपासना और भक्ति कहते हो ? अथवा सब अंधाधुंध जड व्यवहार ! कहते हो तो भी क्या ?

वैष्णव भक्त बोले:—पटेलजी, मानसी पूजा व देवतोंका ध्यान ये तो उत्तम है ? ईश्वर अधर्मियोंको नर्कवास अधोगति और भक्ति आदिक शुद्ध आचरण करनेवाले धर्मियोंको स्वर्ग लोक वैकुंठवास देता है । याते अपने अपने स्वधर्म आचरणसे चले,और मानसी पूजा वा देवतोंका ध्यान करे, इसीसे तो मुक्ति जरूर मिलेगी ? रही बहिरंग सगुण उपासना परन्तु अंतरंग निर्गुण उपासना तो सही करोगे ?

पटेल बोला:--देखो वैष्णवभक्तजी, द्वयमुख अग्नि नारायण, त्रयमुख दत्तात्रेय, चतुर्मुख ब्रह्मा, पंचमुख महादेव, षट्मुख कार्तिक स्वामी; विष्णु और गणेश इन्होंको एक मुख और चार हाथ, देवीको एक मुख और आठ वा सोरह हाथ कोईका बाहन मूंसा, कोईका मोर, कोईका घोडा, ऐसे मनमाने सो विचित्र देवतोंकी मूर्तिका ध्यान हृदयमें करना इसीको मानसी पूजा ठहराये हैं । उसीमें तुलसी, बेलपत्ती, दूब, लाल सपेद आदिक फूल ये जड पदार्थ चढावने, कपूर, उदबत्ती, धूप आदिक पृथ्वीका जड सुगंध जलावने, वस्त्र अलंकारादिक जड पदार्थोंसे सुहावनी मूर्ति बनावने, इत्यादिक बहिरंग पूजा समान अन्तरंग मानसी पूजा है । उसीमें मनकी एकाग्रतासे स्थिरता होती है ये बात सच है । और विष्णु वा कोई मूर्तिकी मानसी पूजा या मूर्तिका ध्यान संपूर्ण हासिल हुआ तो चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्मादिक आयुध सहित पीतांबर

धारी सूक्ष्म अंगुष्ठमात्र प्रकाशरूप श्याम विष्णुमूर्ति हृदयमें दीखने लगती है। अथवा कोई मूर्तिका ध्यान पूरा हासिल हो गया तो, उसी समान सूक्ष्म अंगुष्ठमात्रही प्रकाशरूप मूर्ति दीखेगी ! परन्तु जैसे स्वप्नमें केवल स्मृति या वासनारूपसे कोई दूसरा मनुष्य आदिक जात न रहते, अपनाही भासमात्र प्रतिसृष्टि अनेक स्वरूप धारण कर, नाना व्यवहार कर लेते हैं, वह सृष्टि थोडीही सच है ? तैसेही बहुत दिन मनकी एकाग्रता और निरन्तर अध्यासरूप मूर्तिध्यानसे भासमात्र हृदय मन्दिरके मूर्तिपास बोलना अथवा और व्यवहार स्वप्नवत् होते हैं। वही मूर्तिसे अपनी दृढ एकाग्रताकी भावना फल-रूप होके वरप्राप्ति वा ईश्वरी कृपा होती है। कोई ईश्वरी शक्ति अर्थात् वाचासीद्धि आदिक सिद्धिबल अंगमें प्राप्त हो, कोई संसारका संकट सहजही दूर करते हैं। परन्तु देहके नाश हुयेबाद, वह अंगुष्ठमात्र प्रकाशरूप मूर्ति, केवल देहका भास-रूप प्रतिबिंब देहकेसाथ चला जाता है जो देहही नाशमान है तो अनुमानकी मूर्ति कैसी अविनाशी होगी भला ? इसी वास्ते ऐसे मनके लड्डू खानेसे क्या फायदा निकलेगा और कैसा आवागवन मिटेगा ? देखो बलिराजा और जालंधर राक्ष-सकी स्त्री वृंदा इन्होंने कौनसा अधर्म किया था कि, विष्णु भगवानने उनको दुःख दिया और वाल्मीकि, गणिका, पूतना,

कंस, रावण, अजामिल आदिक इन्होंने कौनसा धर्म किया था कि, विष्णु भगवानने उन्होंको वैकुण्ठ धाम सामीप्य मुक्ति दी, मनमाने सोई कायदा ? ईश्वरके पास तो भी सच्चा न्याय है क्या ? ऐसेही गोपिकादिकोंको विषय आसक्तिसे गोलोग प्राप्ति, आश्चर्य्य है। और भक्ति प्रभावसे अन्य भक्तोंको कौसललोक, इन्द्रलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, वरुणलोक सत्यलोक, ब्रह्मलोकादि, प्राप्ति हुई ऐसा कहा है ! कबीर पंथियोंके एक मतमें भी महन्तसे चौका आरती करवाय, कोई मरे हुए मनुष्य ऊपरसे उतारा हुवा नारियल फोडा कि वह मरा हुआ सेवक नारियलसे निकल निरञ्जनके माथेपर पांव रख, झट चढ जाता है अमर लोकमें ! और वहांके पान परवाना कहिये पान प्रसाद खानेसे और सेवक भी मरे बाद वही अमरलोकमें कबीर पुरुषके पास सामीप मुक्ति प्राप्त होकर रहते हैं ऐसा माने हैं, ये कितना आश्चर्य कहना भला ! देखो वह मतमें कोई सेवकने नारियल फल फोडा कि,एकोत्तरसे कहिये एकसो एक जीवोंकी हत्या होती है, ऐसा डर बतलाना भी कितना अंधेर कहना ! जैन पंथी लोगोंकी एकईस स्वर्गके ऊपर बडी मोटी शिला हीरावत् प्रकाशमान है, जहां उनके तीर्थंकर गुरुवालोग जाके मुक्त भये हैं, उसी ठिकाण पर चालीस चालीस दिन अन्न जल छोड उपवास रह, देह छूटे बाद जाके मुक्त होते हैं ऐसा माने हैं ये भी एक आश्चर्य ही जानो ! सुनो भगवद्गीताका प्रमाणः—

अर्द्धश्लोक—"ते तं भुक्त्वास्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" ॥
अध्याय ९ श्लोक २१

भावार्थ ऐसा है, ऐसे ऊपरके कहे हुये सर्व प्रकारके स्वर्गवासी भक्त लोग, पुण्य क्षीण भये उपरांत मृत्यु लोकमें पाप भोगनेके लिये आयके पश्वादिक चार खानिमें अपने कर्म अनुसार जन्म लेते हैं ऐसा क्यों नहीं कहना देखो, इतनी मेहनत उठाई सब धूरमें मिलना ! कोई सन्देश या चिट्ठी पाती आई है कि स्वर्ग लोकमें सब भक्त लोग बडा सुख बिलास भोगते हैं ! अथवा कोई जाके वहां देख तो भी आया है ! सुखकी लालचसे अनुमान कल्पना कर, नाहक भ्रम धोखाहीमें रहना ! इसमें क्या सार निकलेगा ? विष्णु भगवानको शालिग्राम जड शिला अवतार होनेका वृंदाने शाप दिया, महादेव पार्वतीके विवाहमें पार्वतीका केवल पांव अंगुष्ठका प्रकाश देख, ब्रह्माका वीर्य पतन हुवा, याहीते महादेवने ब्रह्माका पांचवां शिर काट डाला तभीसे ब्रह्माकी पूजा होती नहीं । अनन्तर महादेवके पीछे ब्रह्महत्या लगी । राम अवतारमें रामने वरियाईसे बाली बंदरको मारा, कृष्ण अवतारमें वही व्याधा हो, कृष्णको मार अपना बदला लिया । कृष्ण अवतारमें कृष्णने शिशुपालके हाथ काटे, अब बौद्ध अवतारमें जगन्नाथ भी टूठा ही है । तुम्हारे पूज्य उपासक देवतोंको दुष्ट कर्मका दंड देना पडा, जो सामर्थ्य

भी थी तो क्यों नहीं दुःख छूटा ! अब तुम भक्तोंको मानसी पूजा या ध्यानरूप निर्गुण भक्तिसे मुक्ति मिलेगी, ऐसी आशा तो भी किस प्रकारसे करना भला ? बहुत ही हुवा तो स्वर्गमें जाके, कोई दिनतक अपने अपने पुण्यका स्वर्ग सुख भोग, फिर मृत्यु लोकमें पाप भोगनेको पशु आदिक चार खानिमें वा कोई खानिमें जन्म दुःख दंड भोगना थोडा ही छूटनेवाला है ?

उपरांत हरिदास बोलेः-क्यों पटेल बाबा, फिर कृपा करके कहो भला हम किसकी उपासना और भक्ति करें ?

पटेल बोलाः-सुनो महाराज, जगत् व्यवहारके पाषाण प्रतिमादिक सगुण भक्ति और मानसी पूजा वा ध्यान ये निर्गुण भक्ति और उपासना कर्म मार्गसे चित्त शुद्धिको विशेष काम देगी। इसमें निर्गुण भक्ति अनुभवसे अच्छा वैराग्य सिद्ध होता है। सर्व विषय तुच्छ कुछ माल नहीं ऐसे भासते हैं। संसार रहटा शिर पर बोझ दिये समान कैसा भी चलता रहता है। निरन्तर अन्तरमें दीखनेवाली तेजरूप अंगुष्ठ मात्र मूर्ति विशेष साधनासे आगे आगे ध्यान विना सहज ही दीखने लगती है। तात्पर्य एकाग्र चित्त होनेसे अन्तःकरण शुद्धिको बहुत ही फायदा होता है। चित्त वृत्तिकी सब चंचलता स्थिर हो देवकी पूजा, सदोदित नाम स्मरण, भजन, लीला गाना इत्यादि प्रेम रूप सात्विक वृत्ति होती है। देखो तुलसीदासजी कहे हैं:—

चौपाई—"गुरु बिन भवनिधि तरै न कोई ॥
जो विरंचि शंकरसम होई" ॥
रामायण उत्तरकाण्ड ।

अर्धश्लोक—न गुरोरधिकं तत्त्वं, न गुरोरधिकं तपः

इसीते सगुण और निर्गुण भक्तिसे भी चैतन्य गुरु भक्ति सबमें श्रेष्ठ है । परंतु गुरु कहिये सबसे गरुवा वजन दार वस्तु और गुरुपद कहिये अज्ञान नाशक और सत्य न्याय रूप अटल पद है । सो पद प्राप्तिके लिये जो कोई जड चैतन्य निरुवार कर, ज्ञानीय रूप चैतन्य जीवकी पहिचान वा समझ कर देगा, ऐसे चैतन्य सद्गुरु मनुष्यकी भक्ति करना । जैसी देवकी बडे प्रेम भावसे आपने पूजा करते हैं, तैसी गुरुकी भी करना । प्रथम गुरुके चरण पखार चरणामृत लेना, बंदगी नमस्कार या दंडवत करना, फुलेल, उबटन आदिक, गुरुके अंगको चुपड गरम जलसे उनको नहलाना, गलेमें सुगंधी फूल और तुलसीकी माला डारना; कपालको अर्गजा लगाना; केशर चंदनादिक तिलक कर, अंगको भी चंदनकी उटी लगाना; कपूर, उदबत्ती जलाना; पान, मेवा मिठाई, फल आदिक जो कुछ बने सो आगे धरना, गुरुकी आरती करना, परिक्रमा देना, साष्टांग दंडवत बंदना करना । ऐसी सब प्रकारसे गुरुकी यथासांग पूजाविधि करना चाहिये । उपरांत पीढा रखके ऐपन डारना, और यथा शक्ति रसोई बनाय बडे प्रेम भाव और

स्वस्थ चित्तसे उनको भोजन पकावना गृहस्थ भक्त सेवकोंने अपने हाथसे भोजन बनायके गुरुको कभी न पकावना चाहिये । कारण गुरु शिष्यकी व्यवहारमें एकता होके गुरु मर्यादा टूटती है और सेवकोंकी भक्ति घटती है । और मुख शुद्धि बीडा आदिक देना । सारांश खान पान, बैठना सोवना आदिक सब प्रकारसे उनकी अच्छी व्यवस्था रखना चाहिये । जो पूरा गुरुभक्त होवेगा सोई ऐसी सेवा करेगा । देखो सुंदरदासजी कहै हैं:—

होडा छंद—"चित्त ब्रह्ममें लीन । निज शीतल सो
हिर्दय ॥ क्रोधरहित सब साधी । साधुपद
नाहिंन निर्दय ॥ अहंकार नाहिं लेश ।
महंतसबन सुख दीजे ॥ शिष्य परीक्षा
बिचारि । जगतमाहि सो गुरु कीजे॥"

ज्ञान समुद्र ।

तात्पर्य, गुरु संप्रदाय दीक्षा लेते समय अपना समाधान होने लायक अच्छा देखके फिर गुरु करना चाहिये । जो शांत चित्त, दयावान, निरहंकारी, वेद शास्त्रादिक पूरा जानता, सर्व देशी, सत्य न्यायी, सो गुरु उत्तम है सकल जातिमें शुद्ध चालसे चलने वाला, ब्राह्मण गुरु ही श्रेष्ठ है, परंतु पूरा ज्ञानी चैतन्य जीव रूप सत्य समुझ देनेवाला कोई गुरु मिल गया, तो जैसा दूधमें शक्कर इसी प्रकार और ही उत्तम वहां जातिका कुछ विचार नहीं परंतु

अति शूद्र न होना। ज्ञान प्राप्ति निमित्त ऐसे गुरुके पास दीनतासे कोमल वचन उचारे। आपके पांव मेरे गरीबके घर आये, मेरा ये घर और देहरूपी घर भी परम पवित्र हुआ, मेरा जन्म सुफल हुआ इत्यादिक नम्रतासे भाषण करै, सदोदित काया वाचा और मनसे गुरुके टहलमें सत्संग करता रहै। गुरुको प्रत्यक्ष ईश्वर मूर्ति जान, वस्त्र, पूजा भेट आदिक अपनी शक्ति अनुसार अर्पण करै। कोई साधारण नाशमान वस्तुपर गुरुकी इच्छा गई तो दे डारै अथवा बजारसे नई मंगवाय दे परन्तु गुरुका दिल दुखावै नहीं। जैसे बहूको सास वा छोटे छोकर्डोंको शालामें शिखापन देनेवाला शिक्षक. गुरु है। ऐसा ही नवीन परमार्थिक जिज्ञासु शिष्यको ब्राह्मण या अपनेसे विशेष बुद्धिवाला साधु वा गुरु ही श्रेष्ठ है याहीते ऐसे ही सब भेखोंके साधुवोंमें प्रेम भाव रख, सदोदित सत्सङ्ग करते रहना। देखो एक साधुने कहा है:—

चौपाई—"देव अचेत जड मूर्ति अनेका॥
साधु सचेतन करो विवेका॥
साधु संत गुरु सब हितकारी॥
सेवा करिये ज्ञान विचारी॥"

इसी वास्ते, पाषाण प्रतिमादिक मूर्ति अचेतन जड है, और गुरु, साधु, संत, सज्जन, चैतन्य मूर्तियां हैं। दोनोंकी ही सेवासे चित्त शुद्धिके लिये फायदा है। परन्तु साधु, गुरुकी सेवासे विशेष

हित है, क्योंकि, वह उपदेश बोध दे सुधारने वाले हैं। ऐसी साधु संत या सज्जनोंकी सेवा और सत्संगतिका निरन्तर भक्ति अभ्यास रखनेसे कोई पूरा ज्ञानी वा अनुभवी महात्मा सद्गुरु भी मिल, सत्य ज्ञान वा चैतन्य जीव रूपकी शुद्ध पारख दृष्टि हो, मुमुक्षु वा जिज्ञासु मनुष्य जड बन्धनसे मुक्त होवेगा इस हेतुसे सब संत साधुओंका भाव, भक्ति और सेवामें अंतर कभी करना नहीं। आखिर सकल जीव अपने ही जातके हैं ऐसा चिह, काया वाचा और मनसे अपनी और पराई आत्मा पर जीव दया समदृष्टि रखनेका निरन्तर प्रयत्न कर, जन्म मरणसे मुक्त हो जाना। ये ही चैतन्य उपासना और भक्ति श्रेष्ठ और सत्य है।

हरिदास और तुम वैष्णव भक्त कुछ समझे हो क्या ?

हरिदास और वैष्णव भक्त दोनों बोलेः-हाजी, समुझे तो परन्तु ऐसा चलेंगे तभी सही होगा नहीं महाराज !

विदूषक बोलाः-पटेलजी, केवल जड शब्द रूप प्रेमानदमें मस्त पडे हुये उपासक भक्तोंका तुम्हारा अंतदरजाका उपदेश अन्तर चैतन्य जीवरूप शुद्ध जान पदपर स्थिति करनेका कटि नही जायगा नही क्या ? ताते नाहक मत्था मारके सच्चा हित क्या निकलेगा ? कदाचित् कोई बिरला ही शूर चाहे निकल आवे तो कौन जाने बाबा !

ऐसा विदूषक बोले उपरांत सब चले गये और चित्रपट गिराया।

---

## तरंग पांचवां।

### ( कर्म मार्ग )

प्रारम्भमें विदूषक चित्रपट खोल बाहर निकल आया।

विदूषक बोला:--देखो, चैतन्य जीवको योग मार्गसे खोपरीमें प्राण चढाय, सब वायु रोक, मूर्छावत् होनेका क्या काम क्या कोई जीवके पीछे लगा है ? आसन, मुद्रा, प्राणायाम कर भोगना अन्धियार कोठरीकी शिक्षा ! काहेका योग मार्ग मद्यपीकी नांई नशावत् गाफिली तो।

इतनेमें एक हठयोगी आये।

हठयोगी:--वाहजी विदूषक महाराज, क्योंरे, योग मार्ग अंधियार कोठरीकी शिक्षा ही है क्या ? भला बेटा गप्पोड शंख ? देखो, भगवद्गीताका प्रमाण:—

श्लोक--"तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिको योगीतस्माद्योगी भवार्जुन ॥"

अध्याय ६ श्लोक ४६.

अर्थ ऐसा है, श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा है, हे अर्जुन ! तपस्वी ज्ञानी और कर्मी इन सबोंसे योगी श्रेष्ठ है ताते तूभी योग मार्गसे मुक्त हो। देखो योग मार्गमें प्रथम प्राणायाम प्रधान है। नासाके बांयें छिद्र द्वारा श्वासाको खैंचके ब्रह्मांडमें कहिये मस्तकमें वायु चढावे सो पूरक, फिर ब्रह्मांडमें श्वासा रोके सो कुंभक, और शनैः शनैः नासाके दहिने छिद्र द्वारा श्वासा उतारे और डारे सो रेचक, ऐसे तीन विधिसे एक प्राणायाम होता है। नासाके बांयें चंद्र नाडी इडा, दहिने सूर्य नाडी पिंगला, और दोनों सुर समान चलें वा श्वासा मस्तकमें स्तम्भन होय सो सुषुम्ना, ऐसी तीन नाडियां शरीरमें प्रधान हैं। सब प्रकारसे ये तीनों नाडियोंकी गति जो कोई पूर्ण जानता होय, सो त्रिभुवनमें अचिंत्य है साक्षात् दूसरा ईश्वर ही जानो। ताते ऐसे योग मार्गको मदिराके नशावत् गाफिली कहना कितना अन्धेर है भला ?

इतनेमें एक उत्तम बैरागी आये।

बैरागी बोले:--देखो हठयोगी बाबा, प्रथम योग साधनाको चौरासी आसन कहे हैं। उनमें सिद्धासन, भद्रासन, पद्मासन और सहजासन ये चार आसन प्रधान गिने हैं। परन्तु उनमें सिद्धासन सर्वमें श्रेष्ठ है। उसकी ये विधि है, बांये पांवकी ऐडीसे गुदा द्वार बंद करे और दहिने पांवकी ऐडीसे शिश्न द्वार दबाय, डाढो कंठको लगावै, आंखिकी दृष्टि भृकुटि कहिये दोनों भौंहके मध्य रखै और

शिलावत् सरल बैठे, परन्तु जरासा नाभीका भाग पीछे खैंच धरै। इसीमें गुदा द्वार बंद होवे सो मूल बंद, डाढी हृदय लगनेसे हृदयमें वायु रुके है सो जालंधर बंध और नाभिका भाग खैंचनेसे नाभीमें वायु रुक जावै सो उडियान बंध ऐसे तीन बंध देके आसन करै फिर प्राणायाम करै, ऐसे सब चौरासी आसन साधनेसे ताप, खांसी, तापतिल्ली, जलोदर, मस्तक रोग, धातुविकार आदिक सब रोग दूर हो शरीर ताकतवान् होता है ऐसा ठहराय दिये हैं। परन्तु जन्म मरण रोग वैसा ही बना रहा नहीं बाबा ?

हठयोगी बोले:—देखो बैरागीजी, जन्म मरण रोग छूटनेकी ये प्रथम नीव है। आसन साधे उपरांत यम, नियम और प्रत्याहार रखना चाहिये अहिंसा, सत्य भाषण, दृढ ब्रह्मचर्य व्रत, चोरी न करै और किसीसे पैदा दान न लेवै सो यम है। स्नानादिक शुद्ध आचार रख, स्त्री विषयसे मनको रोक, बहुत निद्रा न ले सदा संतोषमें रहना, धूनी आदिक साधनासे तप करै, स्वाध्याय कहिये सदा श्वासापर लक्ष और ईश्वर प्राप्तिका मनसे खुटका रखै सो नियम है। चित्त पंच विषयोंसे जीतके स्थिर करै सो प्रत्याहार है। ऐसे प्राणायाम, आसन, यम, नियम, प्रत्याहार ये पांच और धारणा, ध्यान, समाधि ऐसे तीन ज्यादा मिलाय समाधिके अष्ट अंग हैं। देखो नाभि नासिका आदिक कोई विशेष स्थानपर चित्त रखै सो धारणा है। चित्तकी स्थिरता कभी चलायमान न होय

सो ध्यान है ऐसी सात साधना भये उपरांत योगके निमित्त खेचरी, भूचरी चाचरी, अगोचरी और अलक्ष ये पंच मुद्रा साधे। खुले नयनोंसे भृकुटी मध्यमें लक्ष लगाय आकाश एक टक निहारै सो खेचरी मुद्रा, इसीमें मोतीकी झर लगी दीखती है। दोनों नयनोंकी दृष्टि नासिकाके अग्र भागमें रख नीचे नाभिस्थान वा भूमि देखै सो भूचरी मुद्रा, इससे बडे बडे प्रकाश ज्वालासमान दीखते हैं। दोनों नेत्रोंकी पलक हाथकी अंगुरियोंसे जरा जोडकर थोडी बेर दबाय, फिर नेत्र खोले, तब चमचम चिमचिम प्रकाश दीखता है सो चाचरी मुद्रा है। सब जगत् भावना छोड लक्ष अंतर हृदयमें समेट कर लावै, तब श्वासा डंडायमान हो प्रकाश दीखता है सोई अगोचरी मुद्रा है। और वही प्रकाश अंगुष्ठामात्र ज्योति देख, बडा आनंद हो, देहभान भी भूलता तो अलक्ष मुद्रा केवल अनुभवसे जानने योग्य है। ऐसी पंच मुद्राकी साधना साध लिया तो, साक्षात् ज्योतिस्वरूप ईश्वर दर्शन होता है।

बैरागी बोले क्यों हठयोगी बाबा ऐसी मुद्रा साधानासे नेत्र रक्तवत् लाल हों, आंखोंसे पानी बहाकर, जीवको बहुत क्लेश सहन करने पडते हैं इतना कष्ट सहन कर, शरीर छूटने समय आँख और ज्योतिस्वरूप ईश्वर भी देहके साथ जाता रहेगा तो ऐसा ईश्वर मिलके कार्य क्या सिद्ध हुवा ? सब पुरुषार्थ वृथाही

कर जानो। ऐसेही प्राण ब्रह्मांडमें चढानेकी महा दुःखरूप साधना है उसीमें बस्ति, गज, धोती, कुञ्जर और नेती ये पंच क्रिया साधने लगती हैं। प्रथम गुदाद्वारमें चतुर्दल कमल मूलाधार चक्र वेधनेके लिये, चार अंगुल बांसकी छोटी नली बनवाय, नाभीतक पानीमें खडे हो, दो अंगुल युक्तिसे गुदामें प्रवेश करै फिर प्राणायामद्वारा गुदासे पानी पेटमें खैंच बाहर छोड़देवै ऐसा तीन बेर साधा तो बस्तिक्रिया सिद्ध हुई। उपरांत वायु चढाय, नाभिके चार अंगुल तरे छः दल कमल स्वाधिष्ठान चक्र बंधनहेतु बारह अंगुलका एक छोटासा लोहाका गज बनवाय, घी लगाय, धीरे धीरे शिश्नद्वारमें चलाकर वह द्वार सफा करै। जब शिश्नद्वारसे दूध ऐंचके शहत सहज ऐंचा तब गज क्रिया सिद्ध हुई अनंतर अपान वायु नाभिमें मिलाय वहां दशदल कमल मणिपूर चक्र बंधनको दो अंगुल चौडी और नौ हाथ लंबी ऐसी एक रेशमकी नाडी बनवाय. उसीका एक अंतका भाग डाढमें रख, प्राणायामद्वारा सब पेटमें लेल, फिर मुँहसे बाहर निकाल, सब मैल सफा धोय डारै, ऐसा तीन बेर साधा तो धोती क्रिया सिद्ध हुई। उपरांत वहांसे वायु उठाय अपान समान ये दोनों वायु हृदयमें प्राणवायुमें मिलावै, और वहां द्वादशदल कमल अनाहत ( अनहद ) चक्र वेधनेकी सबेरे जलदी उठ, बहुत पानी पी वमन करै ऐसा तीन बेर साधे बाद सवा हाथलंबो एक छोटीसी सूतकी रस्सी बनाय

रख, प्राणायामसे पेटमें लील, पानीभी बहुत पी उलट देवे. ऐसा तीनवेर साधा तौ कुंजर क्रिया सिद्ध हुई। फिर वहांसे वायु उठाय, अपान, समान, प्राण तीनों वायु कंठमें उदानमें मिलावे और वहांका सोरहदल कमल विशुद्धि चक्र वेधनेके लिये लंबिका योग करे। रोज दूध आहार करके बहुत बोले नहीं। और जिह्वाके तरेकी रंग मस्का और सैंधव लोन से दिन प्रतिदिन घिस के तोड डारे फिर दंत मंजन करते समय गऊ दोहनवत् दोनों हाथके अंगूठा और उनके नजीक की अगुरियोंसे जिह्वा पकड रोज दोहन कर लम्बी बढाय, ऊर्ध्वद्वार तालुस्थानके पास छिद्रमें प्रवेश करे, उसी को अमृतपान कहे हैं। वही आधारसे समाधि लगाय योगी लोगोंका देह बना रहता है क्योंकि, शरीर के सब छिद्र मूंद घीकुवार पाठाकी नांई शरीरको अंदर वायु प्रवेश नहीं हो सकता। ऐसा अंबिका योग सिद्ध भये उपरांत, दोनों भौंहके बीचमें द्विदलकमल त्रिकुटी या अग्निचक्र वेधनेको छोटीसी सूतकी दातुन मोमसे चिकनी कर नासाद्वारा प्राणायामसे चढाय त्रिकुटी पासके अन्तर छिद्रद्वारा दोनों नासाके, छिद्रसे बाहर निकार धीरे धीरे खैंच, नासिका सफा करे. तब नेती क्रिया सिद्ध हुई। अनंतर ब्रह्मांडसे वायु तरे नाभिस्थानमें उतरके अंतःकरण चतुष्टय उदय होता है सो परा वाचा, हृदय में सर्व वायु इकट्ठा हो, घोर निद्रा लगती है सो पश्यंती वाचा कंठमें

हितनामक नाडी द्वारा स्मृतिरूप स्वप्न भासने वाली मध्यमा वाचा, और नासिका या मुखद्वारा श्वासा और शब्द उत्पन्न होनेवाली वैखरी वाचा, ऐसी चारों वाचा बंद हो कुंभक कर मस्तक या ब्रह्मांडमें बिंदुस्थान वा दशवें द्वारमें सब देहका वायु ले जाना। उसी स्थानको सहस्रदल कमल, ब्रह्मरंध्र या भ्रमरगुफा कहते हैं। देखो भगवद्गीताका प्रमाण:—

श्लो० "नतद्भासयते सूर्योनशशांको न पावकः॥
यद्गत्वा न निवर्तते तद्धामपरमं मम॥"

अध्याय १५ श्लोक ६

भावार्थ ऐसा है, वहां चन्द्र, सूर्य और अग्नि अथवा इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये नाडियोंकी गतिही नहीं सोई परमधाम वैकुण्ठवास, अनिर्वाच्य, निर्विकल्प समाधि अथवा सारूप्य मुक्ति मानती है। वहां योगीजन पहुँचकर ज्योतिस्वरूप ईश्वर देखके ब्रह्मानंदमें मग्न भये उपरांत फिर जन्म मरण चक्रमें पडते ही नहीं ऐसा कहते हैं। वहां पंच विषय, दश इंद्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, वाचा, लक्ष इनकी गति पहुँचतीही नहीं केवल अंगुष्ठमात्र सुनील प्रकाश आनन्दमय महा स्वरूप स्थिति है ऐसा कहते हैं। देखो, ऐसे षट्चक्र बेधनेकी क्रिया करते करते कई हठयोगी प्राणसे उखडगये। वहां विषय नहीं है ऐसा कहते हैं। परन्तु वहां कमलका सुगंध और स्पर्शरूप आनंद हैही। दुंदुभी, भेरी, घंटा,

मृदंग, शंख, झांझ, बीना, बांसुरी, सहनाई और नफीरी ये दश नाद अनहद शब्द धुन सुनना शब्दविषय, लाररूप अमृत पीना रस विषय, और ज्योतिस्वरूप ईश्वर दर्शन रूप विषय, ऐसे पंच सूक्ष्म विषय है ही। वही वासना फिर जन्म धरावती है। योगी तो ज्ञानरूप चैतन्य, परंतु कुछ भी धोखा उपदेश ग्रहण कर, महान दुःख ऊपरके पंच क्रियाका जीवको दे 'कमल भ्रमर न्याय' दशवें द्वारमें बरबस ज्ञानपना गमाय, जड शून्य मूर्छावत् बनते हैं क्योंकि नाद, विंदु और जीवन कला ये तीन एकत्र हो, जड चैतन्य मिश्रित देह बना है पृथ्वी, जल और अग्नि ये तीनों तत्व रूप स्थूल देह पिंडाकार भावना अर्थात विंदुको नशाय जैसा आकाश और वायु ये सूक्ष्म तत्वके विजलीका प्रकाश होता है; तैसे ही मन वा वृत्ति और नादरूप वासा ये दोनोंके संघर्षणसे प्रगट हुवा अंगुष्ठ मात्र ज्योति प्रकाश नादरूप अर्थात् ब्रह्मांडका सूक्ष्म अंश और ज्ञानीय-कला जीव ये दोनोंका एकत्र भाव जड चैतन्य मिश्रित एक प्रकाश रूप देहका प्रतिविंब परमेश्वर या परमात्मा माने है। इसी प्रमाण सुंदरदासजी भी कहे हैं:—

छंद—"नूरमें नूर हैं तेजमें तेजहि।
ज्योतिमें ज्योति मिलीं मिलिजये॥"

सुंदर विलास काव्य।

ऐसा अनुभव रूप मुक्त ठहराया। 'दीपक पतंगवत्' जीवकी ज्ञानीय कला या समझ कला ढांक, तत्वोंके आनंदमें योगी लोग

मस्त धुंद रहते हैं। परंतु वे दशम द्वार, आनंद, श्वासा, खोपरी, सहस्र दल कमल वा भ्रमर गुफा, नाडियां आदिक सब नाशमान देह व्यवहार देहके साथ छोड चले जावेंगे जैसा कोई शस्त्रधारी चीर किसीको मुंहमें तमाचा मार, सब द्रव्य छीनकर लूट लेता है; तैसे ही जीवकी ज्ञान खानी मनुष्य देह रूप द्रव्य लूट डार, ब्रम्हांडकी जड सूक्ष्म आसक्ति ब्रह्मानंद प्रकाश रूप जड तमाचा खाय, हठ-योगीको चौराशीका दुःख सूक्ष्म वासनासे भोगना ही पडेगा। क्या लाभ कमाया भला ? अंतमें इतना कष्ट रूप साधन सब धूरमें मिला नहीं बाबाजी ?

हठ योगी बोले:—देखो बैरागी महाराज, जिसको निर्विकल्प समाधि योग पूरा अनुभव होता है, उसीको अणिमा गणिमा, लघिमा, गिरिमा, हुताशनी, महिमा, अंतरयामिनी और बाचासिद्धि ऐसी अष्ट सिद्धि सहज ही प्राप्त होती हैं। देखो बैठी जगासे किसीने उठाये ना उठे, सो अणिमा सिद्धि है। पृथ्वीमें गडके काशी, मथुराआ-दिक जगह दत्तात्रेयकी नाईं प्रगट होवें सो गणिमा सिद्धि है। छोटासा चींटी समान जैसा हनुमान्‌ने सीता शुद्धि समय लंकामें रूप धरा था, अथवा बालक रूप धारे सो लघिमा सिद्धि है। जैसे श्रीकृष्णने अर्जुनको विश्व रूप दिखाया था, तैसे ही पर्वताकार बड़ा भयंकर विकाल रूप धारे सो गिरिमा सिद्धि है, कोईके मनकी अन्तर बात अथवा सब पृथ्वीकी बातें जाने, जैसा संजयने

धृतराष्ट्रको कौरव पांडवका युद्ध प्रसंग वर्णन कर कहा था सो अंतरयामिनी सिद्धि है । प्रह्लाद समान अग्निमें डारेसे ना जले सो हुताशनी सिद्धि है पर काया प्रवेश करे मरा हुवा मनुष्य जीजावे, तांबा अथवा पत्थर ऊपर मूतनेसे सोना हो जावे, निर्जीव वस्तु चलावे, आसन चीलकी नाई आकाशमें उडावे कोई शस्त्र प्रहार करनेको आया तो उसीका हाथ रोक देवे, भूतभविष्य और वर्तमानका त्रिकाल ज्ञान होय, पानी गिरते समय कोई जगह न गिरने देवे, पानीके ऊपर चला जावे, समुद्र हटावे इत्यादिक नाना चमत्कार करामाती बताय, जगतमें बडा महात्म्य होय, सो महिमा सिद्ध है । शाप या आशीश फलित होय, जैसे किसीको पुत्र धनादिक देवे, कोई का बडा भारी नुकसान करे, किसीको मार डारे या भस्म करे इत्यादिक सब वाचा सिद्धि हैं । ऐसी अष्ट सिद्धि प्राप्त होती हैं नवमी ऋद्धि अर्थात् दश आदमीकी रसोई बनी तो, सौ आदमीको परोस देय तोभी कम न पडे, वैसेही यश, लछिमी, कीर्ति, औदार्य शौर्य और कोईका मन अपने ओर उलटानेकी सामर्थ्य, ऐसा षट् गुण ऐश्वर्य प्राप्त होता है । बहुत बरस आयुर्मर्यादा बढाय सकता है । भीष्म पितामहकी नाई इच्छा मरण सामर्थ्य आती है, बहुत क्या तारीफ कहैं विश्वामित्र समान प्रतिसृष्टि उत्पन्न कर लेता है आप कुछभी चमत्कार बतावोगे क्या ? नाहक भांडसरीखी बकबकही करना जानते हो !

बैरागी बोलेः-तुम्हारा योगीलोगोंका ऋद्धि, सिद्धि आदिक ऐश्वर्य सब देहके साथ चला जायगा। लेने गये पूत और खो आये खसम। इसी प्रमाण तुम सब हठयोगी अपने जीने मरनेका डर न मान, इतनी पंच क्रियादिक मेहनत उठाते हो, परंतु सब अकारथ जायगी। क्योंकि, सत्य, अविनाश स्वरूपका पूरा खोज लगाई नहीं, तब ब्रह्म या ईश्वररूप पूत अपार, अनंत, अनिर्वाच्य सर्वत्र व्यापक अनुमान्में कहिके, हाथ पांव पटक निर्बल लाचार बन जाते हो, और मनुष्यदेहीका जीव खसम नाहक खोय देते हो। ऐसेही शूर बीर लोगोंका काम रहता है देखो सब चमत्कार प्राप्तिको अमनस्क, तारक, लंबिका लय, कुंडली, सांख्य; हठ और राज योग ऐसे अष्ट योग साधने लगते हैं। नासिकाके अग्रभाग ऊपरसे मूर्ति नाभिमें रख, श्वासामें सोहं हंसः ये चार अक्षरका आजपाजाप सहज चला है, उसीपर सदा लक्ष दृढ बांध, श्वासाके बाहर रात दीनमें कभी लक्ष जाने न पावें, सो अमनस्क योग है। सिद्धासन साध दशोंद्वारसे काया कस अंधकार रक्तवर्ण बिजलीसी चमक तारामण्डल, चंद्र, सूर्य आदिक प्रकाश सब लय होता है उपरांत देखो; तुलसीदासजी कहे हैं:--

दो०-"नीलसरोरुहनीलमणि, नीलनीरधरश्याम
लाजहितलशोभानिरखि, कोटिकोटिशतकाम

रामायण बालकाण्ड

इसी प्रमाण नील मणिवत् या अलसी फूलसमान नीलवर्ण बड़ा भारी प्रकाश देखना, सो तारक योग है। पंच क्रियामें दिखाये प्रमाण जिह्वा बढाय, ऊर्ध्व द्वारमें लगाय, कालरूप बिंदु प्राशन करै अवस्था अमृत पान करै सो लंबिका योग है। जागृत अवस्था पृथ्वीतत्त्व मिलके जलतत्त्वमें लय करै, स्वप्न अवस्था जलतत्त्व अग्नि तत्त्वमें लय करै; सुषुप्ति अवस्था अग्नितत्त्व मिलके वायु तत्त्वमें लय करै, तुर्या अवस्था वायुतत्त्व मिलके आकाश तत्त्वमें लय करै, उपरांत देखो सुंदरदासजी कहे हैं:-

पाधडी छंद—"नहिं कारण कारज है उपाधी।
नहिं ईश्वर जीवपरे समाधी।"

ज्ञान समुद्र

इसी प्रमाण कार्य कारण, ईश्वर जगत् एकरूप जाने और ब्रह्मांडमें दश अनहद नाद सुनते, सुनते, आखिर लक्ष घंटा नादमें स्थित करै। अथवा जो जो नादकी जिसकी उपासना होवेगी, वही नादमें लक्ष स्थित करै। उपरांत नाद और लक्ष सहित जीव और ब्रह्मकी आनंदमें एकता करै सो लय योग है। नाभिस्थानमें स्थित सर्पाकार कुंडलिनी नाडी धोती क्रियासे सीधी डंडाकार करके श्वासा ब्रह्मांडमें चढावे, सो कुंडली योग है। देह और देहके स्त्री, पुत्र, धनादिक सब दृश्य प्रपंच व्यवहार अनित्य जान मैं एक आत्मा नित्य, अविनाशि, ब्रह्म बोधरूप, 'सूत्र मणिन्याय' सर्वमें

अनुगत व्यापक जानै, सो सांख्य योग है। सकल जगत् ओंकार स्वरूप ब्रह्म थाप, वही ओंकार ब्रह्मश्वासाचक्रमें सोहं सोहं शब्दसे चला है, उसीपर उठते बैठते, खाते पीते, चलते सोवते समय लक्ष रख, वही जाप करे। देखो; एक साधुने कहाहै:-

चौपाई–"जस कृपिनन धनलोभ घनेरा ॥
कहीं रहै चितवत तेहि केरा ॥
तस परपंच व्योहारहि करहू ॥
नामनेह जनि चित्त दुरावहू ॥"

ऐसा श्वासापर लक्ष जोडते जोडते; हृदयमें ध्यानसे नील बिंदु दीखने लगता है। और दृढ एकाग्रतासे उसीमें नीलमणिवत् श्यामरूप महा प्रकाश अंगुष्ठमात्र ज्योति प्रगट होती है, वही ईश्वर जानना सो राजयोग हैं। पंच क्रिया साधनसे श्वासा ब्रह्मांडमें चढावै, चौरासी धूनी ताप, इंद्रीमें कडा डारे, धूपके चार महीना दिनका बारह बजे, ऊपर सूर्य और चारों दिशा चार अग्नि चेताय, बीचमें बैठ तापै, ऐसा पंच अग्नि साधन साधै। जाडाके चार महीना कहीं क्षेत्र धाम महानदीमें चार लकडे गाड, जलके ऊपर चार छः अंगुल एक पटिया समान लकडी बांधके उसीपर सब रात खुले अंगसे सोवे, ऐसा जल शयन करै। ये साधनामें वे हठ योगीके हाथ पांव और सब शरीर जाडेके मारे अकड जाते हैं फिर सबेरे दो चार साधु उसको उठाय अच्छी तरह तपाते हैं, तब वह सीधा

हो अच्छा होशमें आता है। और सुनो, बरसातके चार महीन अरण्यमें रहके पानी, हवा, धूप आदिक सहन करै। लकडेके पलंग तरे अच्छे तप्त अंगार, बिथार, उसीपर लेट तापै, ऐसी अनल शय्या करैं। एक वृक्ष पर उलटा टंगके मुंह बांध नीचेसे मूंडको धूनिका धूवां लेना ऐसा धूम्रपान करै। एक पटियाको समान ऊंचीसे लोहाके खीले बैठार उसीपर सोवे सो शूल शय्या जानो, जीते ही शूल पर चढाये हैं सब रात दिन ठाढे ही ठाढे झूल रहे हैं और सब शरीरका रक्त पांवमें जमके खंभाकी नाई मोटे स्थूल पांव होते हैं। खडे ही खडे झाडा फिरे और मूत मारै ऐसा पशुवत् आचरण सो ठाडेश्वरी होवै। एक वा दुई हाथ उठाय सुखावै और बडे बडे जटा बढावै जहां दोनों हाथ उठाये हैं तहां जानो दुई हाथ सुखाय पशुवत् हाथके सींग ही बन गये दीखते हैं, फिर शिष्यके हाथसे गांड धोवावै, रोटी पावै, ऐसे स्थितिवाले ऊर्ध्वबाहु होवैं। जीते हो जमीनमें गडके प्राण छोडने थे जीयत समाधि अथवा आत्म हत्या करै। गलेमें कुंभ बांध जलमें बूडके मरै, ये जल समाधि अथवा आत्म हत्याका दूसरा प्रकार इत्यादि नाना भांति जीवको वडा कठिन दंड दे, वही दुःख सोचमें मरना, सो हठ योग है, सुनो "त्रैलोक्यं कर्म बंधनात्" ऐसा स्मृति प्रमाण है। याहीते हठ योग और राज योगादिक योग कर्ममें सब जीव ऐसे साधनाका महान दुःख सहिके, प्राप्त भये ऋद्धि, सिद्धि

आदिक चमत्कारोंका लाभ अपने स्वतःको आवागमन मिटावनेमें रंचक भी उपयोग नहीं केवल दूसरे जीवोंको नाशमान पदार्थोंमें काम देते हैं । तो ऐसे नाशमान वस्तुवोंके खेल देहके साथ सब नष्ट हो जावेंगे । इसी वास्ते वह सब चमत्कार तुम्हारे ही लायक है ! धन्य भाई तुम पूरे महात्मा ! महात्मा अर्थात् बडा भारी अंधियारा वा अहंकार मान बडाईमें फूलके बन गये हो बडे राजे लोग ! देखो हम गरीब मनुष्य तुम्हारे सब नाशवान चमत्कार केवल नर्कवत् तुच्छ जान ऐसे ऋद्ध सिद्ध आदिक महात्मोंके लालचमें हम कभी हाथ न डालेंगे । 'अपना हुवा थोडा और बेंच लाया घोडा' इसी प्रमाण हमारा ही आवागमन छुडानेका पूरा कार्य जलदी होनेको मुशकिल तो औरोंको नाशमान पदार्थ देनेकी सिद्धि और सामर्थ्य कौन काम देगी भला ! वह सब धंधाका बोझा तुमही माथे पर लाद लो ! वाहजी तुमकोही अच्छी शोभा देता है ! परंतु भला, एक विचार और सुनो इसी बाजीगरके बाजीवत् खेलमें नाना चमत्कारोंसे मोहित हो, तुमको स्वतः शुद्धता कभी न आवेगी और अंतमें चौरासी लख योनियोंमें भटकते भटकते अच्छे लात मुक्का आदिक अनेक दंड दुःख सहोगे, तब जान पडेगी अभी करलेव दो दिन बड़ी मौज !

विदूषक बोलाः—अरेरेरे ! ऐसी योग क्रिया दिखाती तो बडा महात्म्य परंतु जियतही भया महान् दुःखका घर और आगे चौरासी जन्म नर्कवासकी मोटरी माथेपर ! वाहजी जगतमें महासिद्धोंकी बडी कीर्ति फैली है, परंतु परिणाम अशुद्ध क्यों निकलना भला ?

इतनेमें एक राजयोगी आये ।

राजयोगी बोले:--देखो बैरागीबाबा, हठयोगमें श्वासाकी प्रधान तीन नाड़ियां इडा, पिंगला और सुषुम्ना; और पूखाका स्थान बाँया कान, यशस्वीनी दहिना कान, गंधारी वायाँ आँख, हस्तिजिह्वा या हस्तिनी दहिना आँख, कूह शिश्नस्थान और शंखिनी गुदा स्थान ऐसी छः नाडियां और मिलायके नौ नाडियोंका वायु हठयोगियोंको रोकना पडता है और लक्ष्मी स्थान पांव सो तलातल, शंकर पार्वतीका वासा शिश्न और भगस्थान सो रसातल, शिवस्थान तालसो पीठ, गणेश स्थान गुदा सो पाताल, सावित्री स्थान पेट सो सुतल, ब्रह्मका स्थान हृदय सो वितल, विष्णु स्थान हाथ सो अतल, ऐसे देहमें सप्त पाताल हैं । ऐसेही मूलाधार चक्र देवलोक, स्वाधिष्ठान ब्रह्मलोक मणिपूर वैकुण्ठलोक, अनाहत चक्र कैलासलोक, विशुद्धिचक्र सत्यलोक, त्रिकुटी महावैकुण्ठ ऐसे छः चक्र वा देवस्थान बेधके ब्रह्मस्थान सहस्रदल कमलमें श्वासा आकर्षण कर हठयोगी जाते हैं और इंद्रखंड हाथ, नागखंड

नासिका, वारुणखंड जिह्वा, गभस्तिखंड नेत्र, ताम्रखंड गुदा, ब्रह्म-खंड कान भरतखंड शिश्न, सौम्यखंड त्वचा, और कशेरुखंड पांव ये नौ खंड हैं। और जंबूद्वीप अस्थि, शंखद्वीप मज्जा, कुशद्वीप, मांस, श्वेतद्वीप बाल, पुष्करद्वीप नाभी, शाल्मलद्वीप त्वचा, क्रौंचद्वीप शिर, ऐसे सप्तद्वीप और नौखंडका राजा होके, दशमखंड काशी ब्रह्मांड वा शिखा स्थानमें सब शरीरकी श्वासा चढाय, निर्विकल्प समाधिमें स्थित हुवा; और काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक विचार नष्ट किये, तोभी समाधि छूटे उपरान्त पूर्ववत् सब सृष्टिके देह विकार बनेही रहते हैं। ताते हठयोग और राजयोग पूरा साधे विना ब्रह्मानंद साक्षात् अनुभव निरंतर एक रस कभी होनेका नहीं ? हठ योगमें शिव, गोरख-नाथ ऐसे महासिद्ध भये हैं, परन्तु उनको भी राजयोग साधना पडा, तभी पूर्ण स्थितिको पहुंचे। इसी वास्ते राजयोग हठ योगसे श्रेष्ठ है उसीका वर्णन पीछे किया ही है। जो हठ योगमें ब्रह्मानंद साक्षात्कार होता है. सोई समाधि लगाये विना सहज विदेह स्थितिमें अखंड ब्रह्मानंद भोगना, सो राज योगका प्रकार है। देखो सुंदर-दासजी कहे हैं:—

चौपाई—"अग्नि जरै ना बूडै पानी ॥
राजयोगकी यह गत जानी॥"

सुंदरविलास काव्य.

ऐसा राज योग सबमें श्रेष्ठ है। मछंदर नाथ, जालंधर नाथ, चर्पट नाथ आदिक नौ नाथ, गोपी चंद भरथरी आदिक राजे पूर्ण राज योगी भये हैं और चौरासी सिद्ध हुये सो न्यारे ही हैं, कलियुगमें चांग देवने चौदह सौ बरस देह रक्खी। सारांश सब फिर जन्म मरण चक्रमें पडे ऐसा कहना, मानों आदि परंपरा योग मार्ग ही डूब गया। छोटे मुँहसे बडा ग्रास नहीं लेना नाहक बकवाद करनेमें सार थोडा ही निकलेगा?

वैरागी बोलेः—सुनो राजयोगी बाबा, निर्विकल्प समाधि अद्वैत रूप साधनेको लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद ये चारों विघ्न अच्छे संभारना लगते हैं। आलस और निद्रासे वृत्ति सुषुप्तिवत् होना सो लय, अंतरमें अद्वैत आनंदकी जगा न मिलनेसे फिर वृत्ति बहिर्मुख होना सो विक्षेप; स्त्री पुत्र धनादिक दृश्य बाहरके व्यवहारमें प्रीति और अंतरमें भूत भविष्य चिंतन रूप मनके अनेक फुरना उदय होना सो कषाय और विक्षेप जन्य दुःख निवृत्तिसे स्वानुभव विना होनेवाला आनंद अनुभव सो रसास्वाद ये चारों विघ्न संभारके हठयोगी ब्रह्मानंदमें मग्न रहता है। गोरखनाथने चौरासी कल्प करके देह वज्रवत् किया था। सब शरीरका मांसगलके हाड, नाडी, मज्जा आदिक एकत्र जमगई थी और देह तामाकी नाई चमकने लगी थी, कभी जल्दी गले न जले और कालके डरसे चोरकी नाई ब्रह्मांडमें प्राण चढाय छीपके और जगत्‌में सिद्ध

कहाये। परन्तु काल कौन सो उन्होंने जाना नहीं। ब्रह्म, आत्मा, निर्विकल्परूप परमानंदी किया, सोई काल उनको खागया! क्योंकि मरण समय सिद्धता, श्वास, खोपरी, योग, समाधि, सब नाशमान देह व्यवहार देहके साथ चलागया। केवल देहके प्रतिबिंबरूप भासमें स्थिति कर, ब्रह्म व्यापक बन, सांच आत्मज्ञान न होनेसे पुनर्जन्मचक्रमें परे, काहेते कि; जीयतही सूक्ष्म तत्वरूप शून्य जड अवस्थामें स्थिति भई थी ताते नाना " जन्म दुःख भोगनाही पडे। अब और देखो, भगवद्गीताका प्रमाणः—

**श्लोक—"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।**
**कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥"**

अध्याय १६ श्लोक २१

सारांश. काम, क्रोध और लोभ ये तीन विकार नर्कके घर जानो, चौरासीमें जानेका घरही है। सुनो, और भगवद्गीताका प्रमाणः--

**अर्धश्लोक-'ईक्षते योगयुक्तात्मासर्वत्रसमदर्शनः'**

अध्याय १६ श्लोक २९

तात्पर्य, सर्व योगी समदर्शी. दयावान रहते हैं। परन्तु सबके आदिनाथ योगी महादेव महासिद्ध, ये तो क्रोधके पुतलाही थे, पक्के तमोगुणी! भिल्लिन, भस्मासुर मारनेसमय विष्णुने धरा हुवा मोहिणीरूप देखके भूल गये। त्रिकाल ज्ञानी ऐसेही रहते हैं।

महाकामी लिंग पतनही हुआ, उन्होंको कहते हो कामारी, क्या शरमकी बात है ! ऐसे ही महासिद्ध जितेन्द्रियोंका लक्षण रहता है देखो, तुलसीदासजी कहे हैं:—

चौपाई-"तमोद्वार किं किंकर नारी ॥"

रामायण अरण्यकांड ।

पार्वतीके गुलामही बने थे । और अनेक जन्मकी उसीके मूण्डकी माला गलेमें तो डारी थी । आदिगुरु योगमार्गके येही तो हैं । उनकी ऐसी दशा, फिर उनके शिष्योंका क्या फजीता पूछते हो । मछन्दरनाथ विषयासक्त हो, स्त्रीराज्यमें जाय, कमला राणीसे रतके छोकड़े उत्पन्न किये, ऐसा सब योगसिद्धिका चकनाचूर उड गया । वाहजी वाह, कहा है 'बापसे सवाई बेटा' सो सचही देख पडता है ? गोपीचन्द राजा काया अमर करना इस कल्पनासे ऐसेही उल्लू सिद्धोंके पीछे लगा, तो जन्ममरण रोग छूटनेको जगा है क्या ? तत्त्वोंकी समाधि, तत्त्वोंका प्रकाश, तत्त्वोंका भास, तत्त्वोंका देह, तत्त्वोंकी वासना इसीको माननेवाले सब सिद्ध योगी ? और तुम उनकाही पक्ष लेनेवाले राजयोगी अच्छा है कोई भी मार्ग चलके मुक्त होवेंगे तब सही । न्याय देखना और बडे बडे योगियोंके विरुद्ध पक्षका । डूबही गया सब मामला । बाबाजी तुमही सच्चे हो, पूर्ण योगी सिद्ध जन्म मरणसे मुक्त होते हैं ऐसाही क्यों नहीं होता, कुछ हमारा थोडाही लेजावोगे ।

राजयोगी बोले:-क्योंजी वैरागीबांवा, योगमार्गसे ब्रह्म साक्षात् अनुभव हुआ, फिर उसीमें जड भावना रही तोभी कौनसी ?

वैरागी बोले:-सुनो राजयोगी महाराज, श्वासा चढानेको पपिल मार्ग, कपि मार्ग, विहंगम मार्ग, शेष मार्ग और मीन, मार्ग, ऐसे पांचही मार्ग साध लिये। उपरांत शरीरकी नव नाडियां सोई नव बडी नदियां, सब नाडियोंकी एक गांठ नाभीमें लगी है, उसीते छत्तीस हजार नाडियां पांवकी ओर तरे और छत्तीस हजार पेटके ओर ऊपर गईं हैं। उनमें मोटी सब नाडी नदियाँ और छोटियोंको नाला ठहराये हैं। और कटोरीसमान, गांठीके सात कमल सोई बडे पर्वत या सात स्वर्ग और माथेका सवा हाथ हाड सोई सुमेरु पर्वत, पीठके हाडोंकी बीचकी नली सोई मेरुदंड, नासिकाके अग्रको ध्रुव नक्षत्र माने हैं। और शरीरके सब हाड सोई पहाड टेकाड आदिक गिने हैं। पीठके पिछवारे हाडोंके इक्कीस मणका ( गुरियां ) सोई एक्कीस स्वर्ग और एक एक मणकाको चार चार छिद्र ऐसे सब छिद्र मिलाय चौरासी योनी माने हैं। लोन या क्षार समुद्र मूत्र, अशुद्ध पानीका समुद्र मल, क्षीर समुद्र नाभिस्थान जहांसे गर्भ स्तम्भन भये उपरांत स्त्रियोंके कुच अन्दरकी सूक्ष्म तंतुरूप नाडियां एकत्र गोला बन कंठमें रहती हैं, सो बढके नाभीतक पहुंचके बंकनाल द्वारा इत दूध उत्पन्न होता है और उत बालककी रक्षा होती है सो मदिरा।

समुद्र पित्त, दधि समुद्र कफ, घृत समुद्र नासिकासे बहता पानी' इक्षुरस समुद्र अर्थात् सांटेका रस वा शुद्ध जल समुद्र सो वीर्य वा बिंदु जिसको योगी जन कामधेनु, अमरकुण्ड या जीवनकला मानते हैं; ऐसे सात समुद्र सात कमलके पास पानीके घेरोंको थापे हैं दोनों भौंहनके बीच त्रिकुटी चक्र, पर जिह्वासे पानी झरता है सो श्रीहाट, नेत्र गोल्हाट, तीनों चक्रका एक मिलाप सोई औटपीठ, सहस्रदल कमल भ्रमर गुफा और शिखास्थान ब्रह्म रंध्र आत्म अनुभव आनन्द अनिर्वाच्य स्थिति सोई 'नील मणिवत्' बिंदु, तामें बडा भारी नील वर्ण प्रकाश ऐसे सात चक्र या सात स्वर्ग ब्रह्मांड वा मस्तकमें माने हैं। कोई कण्ठ श्रीहाट, हृदय गोल्हाट और नाभिस्थान औटपीठ ऐसाभी मानते हैं। रात दिन मिलके मूलाधारसे सहस्रदल कमललों इक्कीस हजार छःसो सोहं हंसः अजपा जाप श्वास खैंचना और बाहर डालनेको ठहराये हैं।

मूलाधारमें व, श, ष, स, चार अक्षरकी उत्पत्ति सोई चतुर्दल कमल और छसौ श्वासका जाप, स्वाधिष्ठानमें ब, भ, म, य र, ल, ये छ अक्षरकी उत्पत्ति, और छ हजार श्वास मणिपुरमें ड, ढ, ण, त, थ, द. ध, न, प, फ, इन दश अक्षरोंकी उत्पत्ति और छ हजार श्वास, अनहदमें क, ख, ग, घ, ङ. च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ये बारह अक्षरकी उत्पत्ति और छ हजार श्वास विशुद्धिचक्रमें सोलह स्वरको उत्पत्ति सोई सोलह दलका

कमल और एक हजार श्वास, त्रिकुटीमें हैं और क्ष इन दो अक्षरोंकी उत्पत्ति और एक हजार श्वास, सहस्रदल कमलमें ज्ञ अक्षरकी उत्पत्ति सोई ज्ञानरूप और एक हजार श्वासका जाप होता है। और मराठीमें ळ अक्षर ज्यादा माना है सो पिंड ब्रह्मांडके दोनों संधिके दो शून्य मिलके हुवा है; ऐसे बावन अक्षर सब सात कमलमें हुये। और इक्कीस हजार छ सौ श्वास उच्छ्वास रात दिन आधीमात्रा या श्वासासे चलते हैं। बांये जल कोठी, दहिने अनल कोठी, शरीरके सब बाल सोई वृक्ष बेलि और घास, पानी गिरता है सोई वीर्य पतन, शीतल, मंद और सुगंध वायु सोई इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियां माने हैं। ऐसे देहके एक एक अंगको भावना करके नाना नाम रखे हैं और ब्रह्मांडमें वा जगतमें ऐसाही अनुमान बांधा है सही परन्तु जैसा भौंरा कमल सुवासके मारे रातसमय कमलमें अटक जाता है; तैसाही योगीलोगोंका मनरूप भौंरा कमल दल सुवासके मारे ब्रह्मांडमें सहस्रदल कमलमें जा अटका, तब मन उन्मन निर्विकल्प हुवा ऐसा माना है। परन्तु वहां सूक्ष्म वायुरूप पंच तत्त्वोंका भोग है ही अनहद नाद सुनना सो धनञ्जय वायुका, शब्द विषय सो कमलका, स्पर्शमात्र आनंद भोगसे कंकरा वायुका स्पर्श विषय, ज्योति प्रकाश देखना सो कूर्म वायुका रूप विषय, अमृतादि रस चाखना सो नाग वायुका रस विषय, और कमलका सुगंध लेना सो धनंजय

वायुका गंध विषय, ये पांचों विषयोंका वहां सूक्ष्म भोग है ही। कोई प्राण छूटे बाद शरीर फूलता है सो धनंजय, छींक किकरा, आंखिकी पलक खोलना और लगाना सो कूर्म, उद्गार नाग और जंभुवाई धनंजय, ऐसा मानते हैं। देखो जो सूक्ष्म पंच विषयोंका भोग रहा, तो सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे सूक्ष्म ऐसे ओतप्रोत पंच विषय भरे हैं ही। ताहीते वही सूक्ष्म विषयका ब्रह्मानंद सुख स्पर्श विषय सर्वत्र. व्यापक थाप, ऐसा ज्ञानदेही मनुष्य जन्म खोय, पंच सूक्ष्म विषयासक्तिमें बंधे चौरासी लक्ष योनिमें योगीजन जाते हैं। ज्यौं का त्यौं निधडक कहनेको क्या हरजा है ! न्यायमें जो बात ठहरे सोई सत्य नाहक पक्ष पकडके क्या मिलाबोगे ? केवल अपनेको आवागमन मिटावनेसे जरूर नहीं बाबाजी ?

राजयोगी बोले:–लय योगमें सब तत्वोंका लय होता है फिर तत्वोंका देह किस प्रकारसैं मिलेगा ! मुक्त तो सहजही होवेंगे।

बैरागी बोलेः--देखो राजयोगी महाराज, आपन देह तो पंच तत्वोंका घडा है, सो नाश भये उपरान्त बाहरके पंच तत्वोमें मिल जाता है सुनो; ये ब्रह्माण्डके पंचतत्व मूलमें अकानादि क्योंकि, पोलरूप आकाश कोईभी लय या नाश न कर सकेगा, और आकाशमें सदोदित पवन भराही है। प्रमाण सुनोः—

"आकाशाद् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः
अद्भ्यः पृथ्वी"॥

इति श्रुतिः।

तात्पर्य, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है, जहा एक तत्व रहा, तहां चारों हैं ही। ऐसी पृथ्वी ऊपर कोई वस्तु नहीं कि, जामें पंचतत्व न होंय। देखो आकाश और पवन दो सूक्ष्म निर्गुण तत्व सनातन ठहरे, तो अग्नि, जल, और पृथ्वी ये सगुण स्थूल तत्व उसीके पेटमें हैं, ताते येभी सनातन ठहरे इसीवास्ते पंचतत्वोंका लय वा महाप्रलय होता नहीं। पृथ्वीके ऊपर समुद्र, नदियां, पर्वत, पहाड, टेकडि, जंगल, बगीचे, वस्तीके शहर या गांव आदिक सबोंमें उलटा पुलट या घट बढ होती है सो अपने प्रत्यक्ष देखते हैं, चाहे तो इसीको महाप्रलय कहो, अथवा अपना चोला छूटे उपरांत महाप्रलय सहजही हुवा ऐसा मानो। इसीसे और ब्रह्मांडके तत्वोंका लय या नाश ठहरावनेको कुछ आधारही नहीं, अनुमानकी बातें कैसी मानना ? जो ब्रह्मांडका महाप्रलय होताही होय तो आकाशमें तो सब तत्व औ सब जीव रहेंगे महाप्रलय कहां होता है ? तैसाही पंच तत्वोंको चैतन्यसत्ता देनेवाला कहिये चालक या चलानेवाला जीवभी सनातन है। परन्तु आकाशका भाग अन्तःकरण वा सूक्ष्म धनंजय वायुमें सामिल हो हठयोगमें हठयोगी सर्व तत्वोंका लय कर, हम निर्विकल्प मुक्त होगये ऐसा निश्चय करते हैं। परन्तु सूक्ष्म विषयोंका अहंभाव और ममत्व रहिके जैसा सुषुप्तिरूप बीजसे फुरनारूप स्वप्न और जागृत व्यवहार प्रगट होता

है क्योंकि, वहां सब विकार नाश होतेही नहीं। तैसे ही सूक्ष्म बीज कायम रहनेसे फिर ब्रह्म साक्षात् अनुभवसे फुरना हो, सब विषय जागृत व्यवहार उदय होते हैं, वहां उन्मनी अवस्था तुर्यातीत होके सब तत्वोंका लय होता है, सो किस प्रकारसे मानना भला ? और राजयोगमें राजयोगी लोग लक्ष श्वासमें बांध ब्रह्मानंदमें जोभी रहे, तो भी जिस समय सुषुम्ना नाडीद्वारा माताके जठरमें गर्भस्तंभन हुवा, उसी समय बहुत थोडी वेर निर्विकल्प वा लययोगवत् माता पिताकी विषयानन्दमें स्थिति हो सबोंने गर्भवास पाया है। तो विषयानन्द और ब्रह्मानन्द नाममात्र दो विचारसे दोनों एकही हैं। एक ब्रह्मांडका ज्यादा और एक पिंडका कम इतनाही फेर है, परन्तु दोनोंही जन्म धरानेमें आदि बीज हैं अब वही फुरनारूप श्वास, या सोहं शब्द गर्भमेंभी था और बाहर आया सयाना भयेबाद-फिर वही उत्पत्तिका बीज सोहं शब्द श्वासरूप और मनके वृत्तिकी एकाग्रतासे निर्विकल्पता तुम राजयोगी लोगोंसे लययोगमें की। परंतु तुमही विचारकरके देखो, जिस अल्प आनंद कहिये रति आनंदसे देहरूप झाड प्रगटा, वही बीज अंतमें लेके, सूक्ष्म तत्त्वोंका प्रकाशरूप महा आनंदकी सूक्ष्म देहवासना रहिके देहसे तुम निकल जावोगे। इसीसे वडे वडे सिद्ध योगी आदिक कुछ भी ज्ञानप्राप्ति हासिल न भयेसे फिर चौरासी योनियोंके जठराग्निमें

जेरेंगे ऐसा नहीं महाराज ! जान बूझके विचार न कियेसे आंखी मूंद मस्त बेफाम, अचेत क्यों बनना भला ! कुछ मनुष्य जन्म सुधारताही नहीं ?

राजयोगी बोलेः--क्योंजी बैरागी महाराज ! अब दया करके कहो योगमार्ग छोड क्या साधन हमने करना ?

वैरागी बोलेः--सुनो राजयोगीजी, हठयोग और राजयोग मार्गसे चित्तकी वृत्ति बाहर न जाने और श्वासमें जोडनेसे एक प्रकारकी उत्तम चित्तशुद्धि होती है, और त्याग वैराग्य रहता है । परंतु देहका सब वायु दंदायमान होकर, श्वासमें प्रगट होनेवाला अंगुष्ठमात्र ज्योतिप्रकाश और अंतमें मूर्च्छावत् शून्य स्थितिका आनंद सब देहके साथ चला जावेगा । जैसा आपन बाहर दिया लगाते हैं, तैसेही आकाश और वायु ये दोनों तत्त्वोंके संघर्षणसे मनकी वृत्ति श्वासमें दृढ बैठ, निर्विकल्प दशा पाय; ज्योति उजियाला प्रकट होताहै । देखो अब जैसा रेलमें अंगुष्ठमात्र ग्यास धुंवाका दिया, अथवा कहीं वैसाही अंगुष्ठमात्र बिजलीका दिया, तेल बत्तीविना लगाते हैं तैसाही देहरूप आयनामें तेल बत्तीविना एक वायु रूप शब्दका प्रकाश प्रतिबिंबवत् भासमात्र प्रगट होता है पाते वही प्रकाश अपना निजरूप मान, ब्रह्मांडके सूक्ष्म आकाश और वायु ये निर्गुण तत्त्वोंका बीज वासना रहिके फिर फिर जन्म दुःख भोगना पडता है । इस वास्ते योग कहिये सत्य, अविनाश;

ज्ञान रूप गुरुपदमें जीवकी एकता करना है, जीव चैतन्य ज्ञानहीमात्र स्वरूप है उसीको बरबस अजान, गाफिल शून्यवत् बनाना ये सच्चा योगमार्ग नहीं। इस लिये जैसा जीवका ज्ञानरूप है, तैसाही कोई दूसरा ज्ञानवान् शुद्ध ज्ञानरूप सद्गुरुकी सत्संगतिसे गुरु उपदेशद्वारा सब जड वस्तुवोंमें पूरी कसर परखके स्थूल और सूक्ष्म कहिये पिंड और ब्रह्मांडरूप नाशमान पंच तत्त्वोंके विषयकी आशा सब छूटेगी; और एक चैतन्य जीव सत्य है, ऐसा विवेक विचार और सत्संगद्वारा पूरी पारख प्राप्त हो जड भावना छूटेगी, तभी जीव देहरूप जड बंधनसे मुक्त हो वर्तमानमें शुद्ध चालसे वर्तेगा। इसी हेतु ऐसा सत्यन्याय दृष्टि देनेवाला संतभी होना, और वैसाही खोजी, विचक्षण चतुर बुद्धिका शिष्य त्याग वैरागसंयुक्त होना, तभी सत्संगतिसे पूरी स्थिति संतोषरूप अचल धारणा होगी। तुम्हारा ये योगमार्ग नहीं और उसीमें मुक्तिभी नहीं, तो केवल हठसे जीवोंको नाना क्रियाका बडा भारी दंड दे जान बूझके जड बनाना है। देखो बावा, पूर्ण विवेक विचार करके ऐसी स्थिति बनावोगे तो अच्छा ही है, मनुष्य जन्म सुफल तो भी होगा। नहीं तो जैसा तुम्हारी खुशीमें आया वैसा नाचो, मना कौन करता है महाराज?

विदूषक बोले:--देखो वैरागी बावा, जैसे मद्यपी, चोर, व्यभिचारी आदिक पूर्ण अमली लोगोंके तुम्हारा उपदेश मानो औंधे

घडापर जलकी वर्षा है । तैसेही सकल योगी लोग योग भमलमें और नाना प्रकारके ऋद्धि सिद्धि आदिक ऐश्वर्य और जगत् प्रतिष्ठामें महाधुंध महात्मा बने हैं । ताते बुढिया तूं सत्य कहती है पर मानता कौन. ! इसी प्रकार तुम्हारा उपदेश कौन सुने और प्रतीत करै ? जलका स्वभावही है. तप्त जीवका कालेजा ठंडा शांत कर देना. परतु यथार्थ ज्ञानरूप जल कोई पीवेगा, तब तो मनुष्य जन्म सुधारै ऐसा विदूषक बोले--बाद सब चले गये और चित्रपट गिराया ।

---

## छठवां तरंग

### ( ब्रह्मज्ञान प्रकरण )

प्रारंभमें विदूषक चित्रपट खोलकर बाहर निकल आया ।

विदूषक बोला:--क्यों हो, ब्रह्मज्ञान शुद्धस्वरूप कहते हैं ! परन्तु उसीमें इच्छारूप महा अज्ञान जगत अंकुर निकलना, 'भूने बीजवत्' या घृतवत्' सबसे ब्रह्म न्यारा, फिर तिलाई लकडेके कोयलामें अंकुर फूटनेवत् अवस्था क्यों होना ? सर्व बासनाओंका मूल कंद, ऐसाही कहना शुद्ध ब्रह्मानंद ?

इतनेमें एक ब्रह्मज्ञानी आये ।

ब्रह्मज्ञानी बोला:--देखो, इस विदूषकके बोलनेमें कुछ भी अर्थ नहीं । सकल सृष्टिमें ब्रह्मज्ञानको दोष लगानेवाला है कौन ?

जगत् तीन कालमें हैही नहीं. कभी उत्पन्न हुवाभी नहीं, न आगे होगा सुनोः—

'एकमेवाद्वितीयम्।'

इति श्रुतिः।

यह श्रुतिप्रमाणसे तीनही काल अद्वैत, अखंड, निरंतर एकरस ब्रह्मस्वरूप है। जैसे मृगजल, शशाश्रृंग, वंध्यापुत्र कहना मूलमेंही झूठ, तैसेही द्वैत, भ्रममात्र जगत् दीखता है वोभी भ्रांतिरूप मिथ्या है। ऋग्वेद, अर्थवण वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये चारों वेदमें अनुक्रमसे 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'अहंब्रह्मास्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म और 'तत्त्वमसि' इन्हीं चारों महावाक्योंका सारांश एक अद्वैतही ब्रह्म सिद्धांत है। ईश्वरकी मायारूप ज्ञान और जीवकी अज्ञान, ये दोनों उपाधि वाच्यांश त्याग कर, लक्ष्यांश अर्थ ग्रहण किया तो, जीव और ईश्वर वा ब्रह्म एकहीरूप है ब्रह्मादिक, सनकादिक ब्रह्मज्ञानी अखण्ड ब्रह्म साक्षात् अनुभव लेके मुक्त भये हैं। देखो, ब्रह्मस्वरूपका वर्णन कहा हैः—

अर्धश्लोक-"ब्रह्मानंदं परमसुखदंकेवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं त्रिगुणरहितं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्॥"

सारांश ऐसा है, अद्वैत ज्ञानरूप पूर्ण स्थितिका जो सुख सोई ब्रह्मानंद अनुभव ऐसा वेदका सिद्धांत है। इस वास्ते अखण्ड

एकरस ब्रह्मसे फिर बासना या जगत् रूप अंकुर निकला ये कहना संभवताही नहीं ।

इतनेमें एक साधु आये ।

साधु बोलेः-सुनो महाराज, जगत् कभी उत्पन्न हुवाही नहीं, और जैसा शक्करका स्वाद वा विषयानन्द सुखका अनुभव कहनेमें आताही नहीं, तैसाही ब्रह्म अनुभव लेनेवाले लोग वाचासे बखान करने नहीं आता ऐसे कहते हैं। जैसी समुद्रके पानीसे उत्पन्न हुई लोनकी धूतली समुद्रका थाह लेने गई, सो समुद्रही बन गई, तैसेही ब्रह्मादिक सनकादिक ब्रह्मसे उत्पन्न हुये जीव ब्रह्म समुद्रमें बूडे । " सो जीवो ब्रह्मैव नापरः " इस श्रुति प्रमाणसे सब ब्रह्मरूपही होगये ऐसा जो माना जाय, तो मायाधीश ज्ञानरूप ईश्वर वा ब्रह्म, और मायावश अज्ञानी अनेक चौरासी लक्ष योनिके जीव उत्पन्न होनेका क्या कारण हुआ भला ? एक अद्वैत ब्रह्म सत्य है और दूसरा कोई नहीं ऐसा सचही है, तो सद्गुरु काहेको चाहिये ? वेद, शास्त्र, श्रुति, स्मृति आदिक सत् शास्त्रोंका कारण कौनसा ब्रह्मज्ञान तोभी किसीको समुझावना ! इसीते ये सूक्षम अज्ञान वा ज्ञान क्या कहते हो ? नाना ज्ञानकष्ट करना सब वृथाही दीखता है नहीं भला ?

ब्रह्मज्ञानी बोलेः-देखो साधुबाबा, जैसा स्वप्नमें राजा वा दरिद्री वनके भय सुख दुःखादिक अनुभव लेता है । घर, मनुष्य, स्त्रियां,

पशु, पंछीं, समुद्र, नदियां, बगीचा इत्यादिक नाना वस्तु देखके प्रत्यक्ष व्यवहारही होता है और सांच भासता है। इसी प्रमाण जगतका प्रपंच व्यवहार दीर्घकाल या कई एक दिन रहनेवाला स्वप्नवत् मिथ्याही है, जब विवेकद्वारा आत्मस्वरूपमें जागेगा तब जागृतरूप स्वप्नभ्रांति मिट जावेगी जैसा किसी आदमीको स्वप्नमें एक सर्पने काटा और उसका जहर चढने लगा, तब मरणके डरसे वही स्वप्नमें जलदी उठ खडा हो, किसी एक सर्पविष उतारनेवाले मंत्रीके पास गया; तब उसने मंत्र पढके स्वप्नमेंही उस आदमीका जहर उतारा, और मरणका डरभी जाता रहा। परंतु जब जागृत हो देखने लगा, तो वह सर्पभी मिथ्या और सर्वविष उतरके मरणका डरभी गया, इतना सब मृगजलवत् केवल भ्रांतिमात्र खेल, सत्यता कुछभी नहीं। तैसाही जागृतमें अहं ममतारूप सर्पभी मिथ्या, संसार सत्यरूप विषभी मिथ्या, मंत्री गुरुभी मिथ्या, वेद, शास्त्र, श्रुति, स्मृति, आदिक सब सत् शास्त्ररूप मंत्रभी मिथ्या हैं, परंतु जिस प्रकार स्वप्नमें वह आदमीका मिथ्या मंत्रोंसे मिथ्या सर्पका जहर उतरगया, तद्वत् मिथ्या गुरुसे मिथ्या वेद, शास्त्रादिक सिद्धांतरूप उपदेश लेके, जन्म मरणरूप मिथ्या रोग दूर करना है। वास्तविक कहोगे तो आत्मा वा ब्रह्म एकही निर्विकार शुद्ध है। परंतु "वादे वादे जायते तत्त्वबोधः" इसी प्रमाण गुरु शिष्यके संवादसे मिथ्या

जगतकी कल्पना मिटाना है। जैसी पवन स्पंदरूप वा चलनेसे भासती है, और निस्पंद वा अचल हुई तो भासतीही नहीं, तैसेही सब संकल्पमात्र वा फुरनारूप सृष्टि है, एक या अनेक जीव कहना बनताही नहीं। वास्तविक विचारकरके देखोगे तो, सुंदरदासजी कहे हैं:--

दोहा—जोकछुसुनियेदेखिये, बुद्धिविचारेजाहि ॥
सो सब वाक्यविलास है भ्रम करि जाने आहि ॥

ज्ञान समुद्र

इसवास्ते बोलना सुनना, प्रश्न उत्तर, बंधमुक्त, जन्म मरण सब बुद्धिविलास भ्रांति है। ऐसा यथार्थ बोध हुवा तब ब्रह्मज्ञान प्राप्ति हुई जानो। क्योंकि देखो, भगवद्गीताका प्रमाण:—

श्लोक—"नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनंदहतिपावकः
नचैनं क्लेदयंत्यापो, नशोषयति मारुतः

अध्याय २ श्लोक २०

सारांश, आत्मा न शस्त्रसे कट जाय, न अग्निसे जले, न जलसे कीचडमें मिले, और न वायु. सोख लेय, याते आत्मा निरंतर अजर, अमर, शुद्धही तो है?

साधु बोले:-क्यों हो ब्रह्मज्ञानी महाराज, ऐसी संसार भ्रांति मिटनेको कौनसी युक्ति वा कौन साधना साधे, सो कृपा करके कहो भला?

ब्रह्मज्ञानी बोलेः--सुनो बाबाजी, सकल धातु छोड जैसा पारसको लोहाही लगावैं तब सुवर्ण बनता है तैसेही विवेक वैराग्य, शमादिक षट्संपत्ति और मुमुक्षुता, ऐसे चार साधन संपन्न अधिकारी हुये विना केवल सद्गुरुके उपदेशद्वारा अन्तः करण शुद्ध न रहनेसे ज्ञान होनेका नहीं। अब उनका भेद सुनो आत्मा नित्य, अविनाशी, और सृष्टिका सब दृश्य प्रपंच व्यवहार, अनित्य, नाशमान ऐसा पूरा ज्ञान हो सो विवेक है। ये लोक ओर स्वर्गादिक सकल प्रपंच भोगके गुण और दोष देख, उनकी आसक्ति छोड सृष्टिसे उदास वर्ते सो वैराग्य है। सुनो, निश्चलदासजी कहे हैं:—

दोहा-"शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम।
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम"॥

विचारसागर प्रथमतरंग।

सारांश; शम, दम, उपरति कहिये उपराम तितिक्षा श्राद्ध औग समाधान ये षट्संपत्ति हैं। अन्तरमें सब मनविकार त्यागे सो शम, बारह इंद्रियोंको पंच विषयोंसे अच्छे जीतना सो दम, प्रपंच व्यवहार बन्धनरूप जानके ग्लानि करना सो उपरति वा उपराम; सुख दुःख, शीत उष्ण, भूख प्यास आदिक सहन कर-नेकी शक्ति सो तितिक्षाः ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुका उपदेश और वेद

वचनपर विश्वास सो श्रद्धा, सावधान मनसे उपदेश सुनना सो समाधान; ऐसा षट्ट संपत्ति प्रकार है शरीरके नानारोग और व्यवहारिक चिंताका मानसिक दुःख सोआध्यात्मिक वा देहिक ताप; कोई जीवके पाससे वा पंच तत्त्वोंसे होने वाला दुःख सो, आधिभौतिक ताप और अचानक शरीरको दुःख होय जैसे बिजली गिरने; धरती डोलने, मार पीट होने आदिक दुःख भोगना सो आधिदैविक ताप ऐसे तीन ताप और गर्भवास, जन्म, मरण आदिक संसार बंधनोंका तिरस्कार करके, मैं जलदी किस प्रकारसे मुक्त होऊँगा ऐसा सच्चे दिलसे रात दिन खुटका रखना सो मुमुक्षता है। इस प्रकार पूर्ण साधन चतुष्टय संपन्न हो, कर्म उपासना हठयोगादिक, बहिरंग साधन साध श्रवण, मनन, निदिध्यासन और 'तत्त्वमसि महावाक्यका विवरण, ये चार अन्य अंतरंग साधन साधना चाहिये। तबही सकल संसार द्वैत भ्रम छूटके एक अद्वैत पूर्ण ब्रह्मस्थिति हो जावेगी।

साधु बोलेः-महाराज, आपने अष्ट साधन कहे सो हम समुझ लिये। अब चार वेदोंका सिद्धांत सुनो–तुर्या अवस्थारूप अनुमानमात्र ऋग्वेद, सो निर्गुण, निराकार, निर्लेप, अगम, अगोचर ब्रह्म कहता है 'निरालंब ब्रह्म' इति श्रुतिः-। सुषुप्ति अवस्थारूप पंच विषयोंका अध्यासमात्र अथर्वणवेद, सो दृष्टिगोचर पंचतत्वात्मक सब सृष्टि सच्चिदानंद ब्रह्मस्वरूप मानता है।

जैसा झाडसे पत्र टूटा सो फिर झाडको नहीं लगता तैसा मरा सो मुक्ति ऐसा ठहराता है ‘ सर्वेवाहं पुरुषः ’ इति श्रुतिः । स्वप्न अवस्थारूप कल्पनामात्र यजुर्वेद, सो क्षीरसागर निवासी नारायणके चौबीस अवतार अर्थात् १ मच्छ, २ कच्छ, ३ वराह, ४ नरसिंह, ५ वामन, ६ परशुराम, ७ राम, ८ कृष्ण, ९ बौद्ध, १० कल्कि, ये दश अवतार, और ११ स्वयंभु मनु, १२ नारद, १३ सनकादिक, १४ कपिलदेव, १५ व्यास, १६ दत्तात्रेय, १७ पृथु, १८ हयग्रीव जिसने मधुकैटभ दैत्य मारा है सो १९ बद्री-नारायण, २० हंस, २१ धन्वंतरि २२ ऋषभदेव, २३ मोहनी, २४ जडभरत इतने सब अवतारोंको ब्रह्मरूप मानता है ‘ सगुणं ब्रह्म’ इति श्रुतिः । जाग्रति अवस्थारूप भासमात्र सामवेद, सो जाग्रति में दीखतेहुये पंचविषयरूप सर्व विश्वकोही अखंड ब्रह्म अद्वैतरूप परमात्मा मानताहै । ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म, इति श्रुतिः । इसी प्रकार चारों वेदोंके सिद्धान्त न्यारे हैं ।

अब छः शास्त्रोंके मत सुनो ।

पूर्व मीमांसा शास्त्रकर्ता जैमिनि ऋषिका कहना जीवका अधिष्ठान, कर्म, जीवकी उत्पति, स्थिति और लय, सब कर्मके आधीन, धनवान भिखारी, सुखी दुःखी, सब कर्मसेही; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, योगी, ज्ञानी आदिक सब कर्मसे श्रेष्ठ हैं याते कर्मही ब्रह्म मानता है ।

वैशेषिक वा अवैदिक शास्त्रकर्ता कणाद ऋषिका कहना, कर्म सब निष्फल हैं। क्योंकि समय वा कालके आधीन कर्म, बाल युवा और वृद्ध अवस्थाओंका कर्म उन अवस्थाओंके समयपरही होगा, सब सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लय, अवतारादिक, सिद्धांती पुरुषोंकी उत्पत्ति सब कालके अधीन है, ताते काल सबका अधिष्ठान, काल वा समय ब्रह्म मानता है।

न्यायशास्त्रकर्ता गौतम ऋषिका कहना काल और कर्म सब ईश्वरके आधीन, सो दरिद्रीको राजा और राजाको दरिद्री बरसातका धूपकाल और धूपकालका बरसात, अज्ञानीका ज्ञानी और ज्ञानीका अज्ञानी, एक पलमें सृष्टिरचना और एक पलमें प्रलय करना इत्यादिक जो चाहे सो करेगा, सब ईश्वरके आधीन है सुनो, भगवद्गीताका प्रमाणः—

**अर्धश्लोक-"भ्रामयन् सर्वभूतानि, यंत्रारूढानि मायया"**

अध्याय १८ श्लोक ६१.

सारांश—सूत्रधार ईश्वर है, सो दारुपूतली माफिक माया चक्रपर सबको नचाता है ताते ईश्वरही ब्रह्म सही करता है।

योगशास्त्रकर्ता पतंजलि ऋषिका कहना ईश्वर मानना अनुमानहै प्रत्यक्ष नहीं। हम योगमार्गसे ब्रह्मांडमें प्राण

चढायके प्रत्यक्ष चैतन्य ईश्वरका दर्शन करते हैं ताते प्रत्यक्ष चैतन्य ईश्वर दिखानेवाला योगमार्ग सांच और सब झूंठ कहता है। सांख्य शास्त्रकर्ता कपिल मुनिका कहना, एकदेशी ज्ञान एकदेशी अनुभव सब प्रकृतिका खेल याहीते योगमार्गमें खोटा है। संसारकी उत्पत्ति स्थिति और लय सब प्रकृतिसे अर्थात् मायासे, सो प्रकृतिसे अनित्य, नाशमान, मिथ्या, और सकल मायाका खेल जाननेवाला सर्व व्यापक साक्षी पुरुष ब्रह्म सत्य ऐसा सिद्ध करता है। उत्तरमीमांसा वा. वेदांत शास्त्रकर्ता व्यासका कहना, सब शास्त्र कल्पितमें हैं, ब्रह्म प्रकृति पुरुष कहना संभवताही नहीं। एक अंखड, ब्रह्म, अद्वैत, एकरस, अपना अपना सकलरूप, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन, कर्ता, क्रिया कर्म इत्यादिक सब त्रिपुटी मिथ्या हैं। नित्य, अनित्य, समाधि सब द्वैत कल्पनामात्र है।

"अणोरणीयान महतो महीयान्"

इति श्रुतिः।

इति श्रुति आधारसे स्थावर जंगम, जड चैतन्य, अणु रेणु-मात्रा सब जगतही अद्वैत ब्रह्म ठहराता है। छः शास्त्रोंके मत न्यारे न्यारेही हुए। अब चार उपवेद सुनो। आयुर्वेदमें रोग चिकित्सा अर्थात् वैद्यक विद्या रोगनिवृत्तिका उपाय है। धनुर्वेदमें

नाना शास्त्र, मंत्र आदिक प्रकार है और रणमें युद्ध करके मर गया सो युक्त ऐसा माने हैं। गांधर्व वेदमें स्वर, ताल, गीत, नृत्य आदिक रागमें तल्लीन होना सोई निर्विकल्पता मानी है। अथर्ववेद में नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र सूपकारशास्त्र कहिये नाना व्यंजन आदिक बनानेकी विधि, ऐसा केवल द्रव्यप्राप्तिका उपाय है। ऐसे चारों उपवेद भी न्यारे न्यारे हुए। अब वेदके षट् अंगभी न्यारे न्यारे ही हैं। शिक्षामें ऊंचा, नीचा, समान ऐसे वेदमें स्वर और ऋचाओंके शुद्धिका प्रकार है। कल्पमें अनुष्ठान यज्ञविधि प्रकार है व्याकरण सारस्वत चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा, शब्द-रत्न, शेखर, मंजूषा, भूषण और भाष्य ऐसे नौ प्रकारके हैं. उसीमें वेद और पुराणोंके शब्दोंकी उत्पत्ति और शुद्धता है निरुक्तमें वैदिक आदिक कठिन शब्दोंका अर्थ है। ज्योतिषमें ब्रह्माण्ड कला, स्वर, प्रश्न गणित और फल आदिक वर्णन है। पिंगलमें श्लोक, छन्द, प्रबन्धादिक रचना और गायत्री आदिक शब्दोंका निरूपण है और उपनिषद, श्रुति स्मृति आदिक मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, पराशर, शुक्र, बृहस्पति, व्यास इत्यादिक ऋषियोंने वेदके चारों महावाक्यपरसे बनाये हैं। चौदह विद्या मुख्य गिनी हैं, सुनोः—

श्लोक- ब्रह्मज्ञानरसायनंचकवितावेदस्तथाऽज्यो-
तिषंव्याकरणं सधनुर्धरंजलतरंसगीतकं वैद्यकम् ॥

**अश्वारोहणकोकशास्त्रनिपुणं नाट्यं तथा चातुरी**
**विद्या नामचतुर्दशप्रतिदिनंशेषाःकलाः कीर्तिताः ॥**

अब विद्याओंके नाम सुनो १ ब्रह्मज्ञान, २ रसक्रिया, ३काव्य, ४ वेद, ५ ज्योतिष, ६ व्याकरण, ७ धनुर्विद्या, ८ जलतरण अर्थात् जलपर तिरना, जहाज, बोट आदिक जलपर चलवाना, ९ संगीता अर्थात् १ श्रृंगार, २ वीर, ३ करुणा, ४ हास्य, ५ भयानक, ६ बीभत्स,७ अद्भुत, ८ रौद्र, कहिये बडे २विकराल, स्वरूपका वर्णन और ९ शांत ये नौ रस गायन, राग, रागिनी आदिक प्रकार हैं । १० वैद्यक, ११ अश्व संवारन, १२ कोक १३ नाटक, चाटक १४ चातुरी, ऐसी चौदह विद्या और चौंसठ कला न्यारीही हुई । जारण, मारण, उच्चाटन अर्थात् भूत प्रेतादिक मंत्रोंका श्मशानमें साधन, और वशीकरण, आकर्षण, स्तंभन मोहन, ये कामशास्त्रकी विद्या, ऐसी सप्तविद्या न्यारीही हुई । १८ पुराण न्यारेही भये हैं उन्होंके नाम सुनो—१ ब्रह्म,२ पद्म,३ विष्णु, ४ शिव, ५ भागवत, ६ नारद ७ मार्कंडेय, ८ अग्नि, ९ भविष्य १० ब्रह्मवैवर्त, ११ लिंग, १२ वराह, १३ स्कंद, १४ वामन, १५ कूर्म, १६ मत्स्य, १७ गरुड, और १८ ब्रह्मांड और उपपुराण, देवीभागवत आदिक बहुतही हैं । अट्ठासी हजार ऋषियोंके मत न्यारेही भये हैं । १ योगी, २ जंगम, ३ जैन, ४ संन्यासी, ५ फकीर, और ६ ब्राह्मण, ये षट्दर्शन न्यारेही हैं षट्दर्शन जाप सुनो । नादमहि अहंनाद ये योगीका जाप,

निरंजनाय जंगमका, तत्त्वानाम अरिहन् जैनीका, सोहं ब्रह्म संन्यासीका. सोहं हंस बिंदू फकीरोंका और हू अल्लाहू मुसलमान फकीरोंका, और ॐकार ब्रह्मका जाप ऐसे छः दर्शनके जाप हैं। अब छः दर्शनके सिद्धांत सुनो। पृथ्वीमें पृथ्वी ये योगीका सिद्धांत महदाकाश जंगमका, चंद्रमुक्त शीला जैनीका, अहं ब्रह्मास्मि संन्यासीका, पवनमें पवन दर्वेश वा फकीरोंका, अद्वैत ब्रह्म ये सिद्धांत ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंका, ऐसे, षट्दर्शन, उन्होंका जाप और सिद्धांत न्यारेही भये। दश नाम, संन्यासी, बारह योगी, चौदह फकीर, अठारह ब्राह्मण १८ जंगम, और चौबीस जैन लोगोंके तीर्थंकर ऐसे छानवे पाखंड न्यारेही भये। वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर्य ये पंच देवतोंके उपासक उदासी, नागे, गुसांई, बैरागी, अवघड नाथ, निरंजन, नानक पंथी, दादू पंथी, कबीर पंथी, मानभाऊ, दत्तमार्गी, दिगंबर मौनी आदिक परमहंस, संन्यासी आर्यसमाजी ब्रह्मसमाजी ऐसे पंथ और मार्ग बहुतही निकले हैं। तपसी, सिद्ध, नख जटा बढाये, मृगछालावाघंबर और काले पीले, हरे, भगवे केवल पीतांबर आदिके ओढे हुये, टोपी माला छाप तिलक बनवाये, लंगोट कफनी आदिक पहिरे हुए इत्यादिक नानाः स्वांग बहुत ही बनवाये दीखते हैं। मुसलमान, खिस्तानोंके बायबल, कुरान, किताब आदिक ग्रंथ; दाऊद, सुलेमान ईसा, मूसा-

और महंमद, थे नवियोंने बनवाये न्यारेही हैं कोई तत्त्वादी, प्रकृति कहिये स्वभाववादी, देहवादी, 'वीर्यं ब्रह्म दिव्यं जानात्' ऐसे वीर्यवादी विषयासक्त, शून्यवादी, ऐसे वादी विवादी न्यारेही हुए। इतना बडा आडंबर जागृतरूप स्वप्नमें नानापंथ; नानामार्ग, नानामत मतांतरोंका गलबला, हल्ला, कल्ला वा कोलाहल होरहा है। जो कहोगे कि जन्म मरण मिथ्या, स्वप्न 'मृगजलवत्' कुछभी है नहीं तो उसीकी सब निवृत्ति क्यों चाहते हैं? बडा भारी आश्चर्य कुछ कहा नहीं जाता! शब्दरूपी धमलमें सब धुंध गलतान हुये हैं। स्वर्गमें, पातालमें, पंचतत्त्वोंमें गंगा' यमुनादिक पानीमें, प्रतिमादिक जड मूर्तियोंमें, शून्य समाधिमें न्यारा, साक्षी फिर सबमें व्यापक, इस प्रकार आत्मा परमात्मा परब्रह्म ईश्वर या खुदाको ढूँढ रहे हैं। निर्गुण, निराकार, बेचून, बेनमून, अनुमानसे मान रहे हैं। देखो, ऐसे खोजते खोजते ब्रह्मा, विष्णु, महेश सरीखे हार गये, मुसलमान ख्रिस्तानभी हार बैठे। चौदहस्वर्ग वा चौदह तबकके ऊपर ब्रह्मांडमें आकाशकी तरफ देख रहे हैं। और आप कहते हो, सकल ब्रह्म एकरस अद्वैत है, ये सब गधोंकी वार्ता और दो दो लाथा' इसी प्रमाण हमको प्रत्यक्ष दीख रहा है सुनो, सुंदरदासजी कहे हैं:—

छंद-"एकब्रह्म रह्यो भरपूरते, दूसर कौन बतावनहारो॥ जोकोइ जीव करै परमान तो,जीव

कहा कुछ ब्रह्मते न्यारो॥ जो कहि जीव भये
जगदीशते, तो रविमाहि कहांको अंधारो ॥
सुंदर मौन रही यह जानिके, कौनहुं भांति
नहै निरधारो ॥"

सुन्दरविलास

देखो, ऐसे ब्रह्मज्ञानियोंके अंदर दुगदुगी क्यौं ? अब जो ब्रह्मज्ञानी अद्वैत हैं ऐसा कहा जाय, तो ब्रह्मका अनुभव लेनेवाला दूसरा रहे विना, एक ब्रह्म है ऐसा भासा तोभी हो गया कैसा ? इतने शास्त्र, उपाय और साधना सब वृथाही हैं नहीं महाराज।

ब्रह्मज्ञानी बोले: देखो बाबाजी, कोई ब्रह्मज्ञानीनेही कहा है:—

चौपाई—"वेश्या करै सिंगारहि नाना ॥
देहि निहारत भुले जहाना ॥
रस राचै तब अँतरंग जाने ॥
वेदवाक्य अस लेहु पिछाने ॥"

तात्पर्य ऐसा है, जैसे वेश्याके हाव, भाव और श्रृंगारादिक देहकांति बहिरंग शोभा देख; विषयी जन आशिक हो जाते हैं। परंतु विषयसुखका आनंद उसीके भोगविलासमें प्रगट होता है। तैसेही वेद, शास्त्रादिक नानामत मतांतरोंका वाक्यविलास वाच्यांश देखनेसे पूरा अर्थ निकलनेका नहीं जब लक्ष्यांश जानोगे तब ब्रह्मज्ञान सहजही प्रकाश होगा। वेदमें छःपदार्थ अनादि माने हैं,

शुद्ध, ब्रह्म, प्रकृति कहिये माया वा पंचतत्त्व शुद्ध ब्रह्म प्रकृतिका सम्बन्ध, ईश्वर, जीव और जीव ईश्वरका भेद सारांश, सब प्रपंच व्यवहारप्रवाहरूपसे आनादि है परंतु यद्दृष्टं तन्नष्टं ये श्रुति प्रमाणसे सब दृश्य प्रपंच व्यवहार अनादि सही परंतु अनादि सांत है अर्थात् अंतमें सब प्रलय हो जावेगा। जैसे घट और जल उपाधिसे सूर्यकी किरनमें अनेक प्रतिबिम्ब दीखते हैं, तैसेही ब्रह्मका सहज स्वभाव एक 'अहं इच्छा' या स्फुरन शक्ति उत्पन्न होनेसे 'बहुस्याम्' अनेक जगतके जीव, यह ब्रह्मके चिद् अणुसे कहिये चैतन्य अणुसे उत्पन्न भये हैं। देखो, तुलसीदासजी कहे हैं:—

चौपाई--"शंभु विरंचि विष्णु भगवाना,
उपजँहि जासु अंशते नाना" ॥
रामायण बालकाण्ड

जैसे कोई जीवको रस्सीमें सर्प, सीपमें चांदी भ्रमसे सच भासती है, तैसीही अनेक प्रकारकी सब मिथ्या सृष्टि केवल स्वप्नवत् भासती है। सो मिथ्या भ्रम, अब मिथ्या गुरु और मिथ्या वेदादिक उपदेश प्रभावसे दूर होय, तब चिद् अणुजो अंशमात्र जीव शुद्ध ब्रह्मरूपमें मिलके शुद्ध होजावेगा। फिर काहेको जन्म और मरण सब मिथ्या कल्पना हैं। ब्रह्म स्वतःसिद्ध अलिप्त स्वयंप्रकाश है, ब्रह्मको दूसरा जाननेवाला है कौन ?

साधु बोले:-देखो ब्रह्मज्ञानी महाराज, कोई फुरना वा इच्छा होती है, सो केवल जड पंच तत्त्वोमेंभी नहीं और शुद्ध चैतन्य मेंभी नहीं, तो दोनोंके संबंधमें होती है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव आता है। परंतु आप तो शुद्ध चैतन्य ब्रह्मकी इच्छा ये सहज स्वभाव कहते हो, तो जड सूक्ष्म तत्वोंके आश्रयविना इच्छा उदय कैसी होगी ? तैसेही उसी इच्छासे अनेक अज्ञानी जीव उत्पन्न हो, जीवरूप ब्रह्मको आच्छादन वा आवरण कैसा हुआ ? जैसी दीपक ज्योतिमें कालिमा, सूर्यमें ग्रहण, अग्निमें धुंवा' गोरे अंगमें जरासा दाग, ये प्रकाशको कालिमा है, तैसाही अज्ञानरूप अन्धकारका बीज या अधिष्ठान ब्रह्म होके, उसीको शुद्ध चैतन्य प्रकाशरूप कहना मानो दिनमेंही किसीके नेत्रमें धूर डालनेवत् दीखता है। देखो, जाग्रतमें जे जे पदार्थ देखे, सुने और भोग लियेहैं उन्हींकी स्मृति वा संस्काररूप स्वप्न होता है तैसेही शुद्ध ब्रह्म भी जागृतिरूप दीर्घकाल स्थित मिथ्यास्वप्न भांतिकी स्मृति, वही अंशमात्र अहं स्फूर्ति मायारूप कालापना नहीं तो आया कहांसे ? वही कालिमारूप स्फुरण शक्ति वा आदि माया, जैसा जलपर एक तेलका बूंद डारनेसे झट फैल जाता है, तद्वत् एक पलमें सब जग व्यापक फैल गई। इसीका प्रमाण सुनो, सुंदरदासजी कहे हैं:—

छंद—"ब्रह्मते पुरुष अरु, प्रकृति प्रगट भई।
प्रकृतिते महत्तत्त्व, पुनि अहंकार है ॥

अहंकारतै तो तीन, गुण सत्त्व रज तम ।
तमहूते महाभूत, विषय पसार है ॥
रजहूते इंद्री दस, पृथकपृथक भई ।
सत्त्वहूते मन आदि, देवता विचार है ॥
ऐसे अनुक्रमकरि, शिष्यसों कहत गुरु ।
सुंदर सकल यहा, मिथ्याभ्रमजाल है ॥

सुंदरविलास काव्य,

तात्पर्य, ब्रह्मसे पुरुष, प्रकृति, प्रकृतिसे महत्तत्त्व महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे त्रिगुण, और त्रिगुणसे संसार सब जगत जीव फैलगये, ताते ऐसा जन्म मरण दुःखदायक वह इच्छारूप कालेपनको शुद्ध तो भी कैसे मानना ! ऐसेही ब्रह्मज्ञानको मुक्ति कहना, अथवा, महान दुःखका घर क्या कहना ? ब्रह्मज्ञानसे सब अज्ञान नष्ट होता है ऐसा कहते हो परन्तु ‘दियाके गांड तले अंधियारा ऐसेही भ्रांति, भूलवा भ्रम वही शुद्ध ब्रह्ममें व्याप्ति होना ? वाहजी! महाराज ! ऐसे हमको भ्रममें क्यौं डालते हो जीवको ब्रह्मका प्रतिबिंब कहना; तो प्रतिबिंबको ज्ञान होता ही नहीं, परन्तु प्रतिबिंब रूप जीवको ब्रह्मका ज्ञान होता है, गुरुशिष्यरूपसे जीवही जिवको उपदेश करते हैं । ताते ब्रह्मही जीवका प्रतिबिंब वा अंश और जीव पूर्णपद, ऐसा क्यों नहीं कहना ? जीवको ब्रह्मज्ञानका कुछभी फायदा न होते जीवही अपने भास अर्थात् ब्रह्मरूप भ्रममें

नाहक मरेगा। याहीते ब्रह्मका लाभ फिर फिर जन्म लेनाही दीखता है, और ज्यादा कुछ नहीं, ऐसाही है नहीं महाराज ?

ब्रह्मज्ञानी बोले:—देखो साधुबाबा, जैसा कोई मनुष्य ऐसा स्वप्न देखता है कि, मेरा शिर कट गया तो भी मैं जीता हूं। जागृत स्मृतिकीही स्वप्न प्रतीति होती है ऐसा कुछ नियम नहीं। तैसाही जागृतिरूप स्वप्न ब्रह्मसे उदय नहीं भया, तो वह अनादि कालका रोग जीवने केवल कल्पनासेही आपने माथेपर धर लिया है, सो कल्पना निवृत्ति भई तो जीव शुद्धही है। ब्रह्ममें जो फुरना होती है उसीके प्राण, चित्त, जीव, मन, बुद्धि, अहंकार, माया, प्रकृति, इतने नाम पडे हैं। परन्तु जैसा झाड, डार, पत्र, फूल, फल और बल्कलोंसे कुछ न्यारा नहीं। तैसेही जीव, चित्त आदिक न्यारे न्यारे रूप सब ब्रह्मकेही हैं। प्राणका फुरना अचल करके जो अनुभव आता है सो सोई साक्षात् स्थिति है। ऐसा अनुभव सदोदित जागृत रहना सोई मुक्ति है। जागृति और सुषुप्ति इन दोनों अवस्थाकी मध्य स्थिति वा वृति देशांतर गई उसीका आदि और अंत छोड मध्य स्थिति वा निर्विकल्प स्थिति सोई ब्रह्मसत्ता है। तैसा निर्विकल्प महान प्राप्तिबिना जीव कभी मुक्त होनेका नहीं।

साधु बोले:—सुनो ब्रह्मज्ञानी महाराज, आप जागृतिकी स्मृति वा यदि स्वप्न प्रतीति नहीं ऐसा कहते हो। परन्तु स्वप्नमें स्त्रीको

पुरुष वा पुरुषको स्त्री आपन हुये हैं अथवा कोई मनुष्य मैं अपना आप वाघ, बैल, ऊंट अदि पशु हुवा हूं, ऐसी प्रतीति स्वप्नमें क्यों नहीं होती ? तैसाही स्त्रीका स्त्रीसे और पुरुषका पुरुषसे संभोग होता है, ऐसीभी कभी स्वप्नमें प्रतीति नहीं होती, ताते जागृत व्यवहार विरुद्ध स्वप्न क्यों नहीं प्रतीत होते ? इस वास्ते कहीं जागृतिमें पशु वा मनुष्योंका शिर कटा हुवा देखे या सुने रहता है, सोई स्वप्नमें विपरीतभाव, अपना शिर कटजाने उपरांत मैं जीता हूं ऐसी प्रतीति होती है। ऐसी स्वप्न प्रतीति, जागृतिकी स्मृति वा संस्कार कारण नहीं तो क्या है ? स्वप्नमें पुरुषने स्त्री संभोग वांसनामात्र कियेसे बिंदु पतन हो, जागृतिकी धोती क्यों गिली हो जाती है ? चोर, बाघ अथवा भूत प्रेतादिक डरके मारे जागृतिके मुँहसे घबराहट शब्द क्यों सुननेको आता है ? याहीते जागृतिका स्मृति जन्य स्वप्न है, ऐसा सिद्धांत सहजही होता है। तैसे ब्रह्ममें भी जन्म मरणरूप स्वप्नरोग सनातन वा अनादि कालका बनाही दीखता है, और अनादि रोग कभी मिटतेही नहीं। तो अब मिथ्या गुरु और मिथ्या वेदादिक उपदेशसे 'त्वं ब्रह्मासि तूही ब्रह्म है, ऐसा बाहरके स्थूल इंद्रिय और मन, बुद्धि आदिक अंतर सूक्ष्म इंद्रियोंके वा वृत्तिद्वारा शब्द प्रमाणसे परोक्ष ज्ञान हुवा। अनंतर प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन पांच और प्रमाणोंसे 'तत्त्वमसि' महावाक्यका विचार करके,

मैं स्वत:सिद्ध ब्रह्म सर्वत्र व्यापक हूं, ऐसा अनुभवरूप अपरोक्ष सामान्य ज्ञान अथवा सायुज्य मुक्ति स्थिति हुई, तोभी ऐसे ज्ञानसे मुक्ति मिलनेकी नहीं, क्योंकि 'मृग जलवत्' मिथ्या स्वप्न प्रतीति, सो त्वपद आज्ञान जीवोंकी प्रातिभासिक सत्ता है । नानासृष्टिके ईश्वर निर्मित पदार्थोंकी सत्यप्रतीति सो तत्पद ज्ञानरूप ईश्वरकी व्यावहारिक सत्ता है। और 'सूत्रमणिन्याय' असिपद विज्ञान ब्रह्म ओतप्रोत सर्वत्र समान व्यापक भासमात्र सो पारमार्थिक सत्ता है। ऐसी तीनों सत्ता जहां एकत्र मिल गई, सोई आत्मस्वरूप सामान्य सत्ता ब्रह्मज्ञान शुद्ध ठहराये हैं । तत्पद ईश्वर ज्ञानरूप. और त्वंपद जीव अज्ञानरूप, ज्ञान अज्ञानकी एकता सोई असिपद ब्रह्म, जड चैतन्य मिश्रित विज्ञान स्वरूप शुद्ध माने हैं । परन्तु त्रिदोष वा सन्निपात स्थितिकी नांई बाल, मूक, जड दशा धारण करके उन्मत्त, पिशाचवत् स्थिति होना, सोई परमहंसदशा सबमें श्रेष्ठ मानी गई । परन्तु जीव और ब्रह्मकी एकताई भई नहीं ऐसा दीखता है । क्योंकि जो जीव ब्रह्मकी एकताई होती तो ब्रह्मका अनुभव किसी प्रकारसे कहनेमें मिथ्या जीवसे न्यारा और जीव न्याराही है देखो, भास और भासिक न्यारा, अनुभवन और अनुभवी सदा न्याराही रहता है ऐसा नहीं महाराज ! जैसा गुड, गुडका स्वाद,और स्वाद लेनेवाला स्वादी सो तीनों भी न्यारे न्यारे

रूप हैं। तैसाही पंचतत्त्वरूप गुड, सूक्ष्म पंच तत्त्वोंका आनन्द सोई गुडका स्वाद और आनन्द जाननेवाला जीव स्वादी निरंतर न्याराही है नहीं क्या ? इसीते अद्वैत ब्रह्म सर्वत्र व्यापक न्याय रीतिसे कभी सिद्ध होनेका नहीं। ताते है एक प्रकार और मन माने सो बकना सोई नास्तिक है। तुम ब्रह्मज्ञानी लोग सब नास्तिक मतके दीखते हो 'भूने बीजवत्' सकल आशा बासनासे रहित ब्रह्म, परन्तु अग्निके अनेक चिनगारे निकलने समान, ब्रह्म-रूप आनंद समुद्रसे दुःखके अनेक तरंगरूप जीव सदाही उदय हो मिट जाते हैं। तो ऐसा अनादि जन्म मरण रोग छूटे किसी प्रकारसे ? जैसा तिलाई झाड काटके, उसी लकडेके कोयलामें जल सींचनेसे अंकुर फूटते हैं, तैसेही शुद्ध ब्रह्मकी स्थिति फिर फिर उत्पत्ति प्रलयकी क्यों रहना।

बीचहीमें विदूषक बोलाः—वाहजी वाह, कैसा आश्चर्य है ? परमहंस लोग श्रेष्ठ महात्मा, परन्तु सर्वत्र व्यापक जड तो भी क्यों बने ? भ्रांतिवत् उन्मत्त अवस्था क्यों हुई ? क्या विज्ञान रसायनमें दोष ? क्या ब्रह्मज्ञानी वैद्य दोषी ? क्या जन्ममरण रोग कुछभी न रहते सब जीव रसायन लेनेवाले महादोषी ? यहां अक्किल कुछ ही काम नहीं करती माई।

इतनेमें एक शास्त्री महाराज आये।

शास्त्री महाराज बोलेः—सुनो साधुबाबा, ब्रह्मज्ञानका मूल हेतु ऐसा है कि, जन्म फिर हुवा तो भी शुद्ध कुलमें हो, भक्तमार्गमें ही लगेगा, संसारमें कभी भूलनेका नहीं। जो नीव अच्छी मजबूतहै तो ज्ञान इमारत कोई जन्ममें तो भी निश्चयसे पूरी होवेगीही !

साधु बोलेः--देखो शास्त्री महाराज, तुलसीदासजी कहे हैं:—

**चौपाई--"शठ सुधराहिं सत संगति पाई।**
**पारस परसि कुधातु सुहाई ॥"**

रामायण बालकाण्ड

और सुन्दरदासजी कहे हैं:—

**छंद-"ज्यौं द्रुम और अनेकन भांतिन।**
**चंदनके ढिग चंदन होई ॥"**

सुन्दर विलास

सारांश, शुद्ध या सत्संगतिका फल उत्तमही मिलता है। परंतु ब्रह्मज्ञानियोंकी संगतिसे ऐसा जानना कि कोई वस्तु अस्ति नाम है सो सत, भाति नाम भासती है सो चिद् और प्रिय नाम है आनंद, सोई ओंकार सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप है। अकार पृथ्वी ब्रह्मा, उकार विष्णु जल, मकार अग्नि महेश, अर्धमात्रा वायु आदि माया, और बिंदु शून्य आकाश सोई निरंजन आत्मा, ऐसी पंच तत्वरूप सर्व सृष्टि ओंकार ब्रह्मस्वरूप कहते हैं। परंतु पंचत-

क्योंके पंचविषय न्यारे न्यारेही हैं। विष अमृत, अग्नि जल, साधु महामूर्ख, चार खानीके न्यारे न्यारे जड आसक्त जीव, जड चैतन्य, ज्ञान अज्ञान इत्यादिक सकल स्थावर जंगम पदार्थोंके न्यारे न्यारे गुण हैं, उन्होंको एक तो भी किस प्रकारसे मानना ? मैं दशों दिशोंमें पूर्ण व्यापक हूं मेरेको पाप ना पुण्य शुभ ना अशुभ ऐसा ठहराय, मन माने सो अनाचार, मद्य मांस भक्षण, कोई क्षीसे खोटे कर्म करना, कोई जीवको शस्त्रसे हनन करके दुःख देना, और जो चाहिये सो पशुवत् नीच कर्म करना, ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंका व्यवहार चलना ! चलताही है याते मेरा मैं अकेला ब्रह्मरूप सकल कर्ता, विदेह स्थिति, ऐसा ठहराये हैं नहीं क्या ? परंतु प्रतिदिन गोबर वा विष भक्षण करके पेटका गढ्ढा तो भी भर लेना, ऐसा कर्म क्यों नहीं होता इतना ज्ञान रहाही है फिर विदेह स्थिति काहेकी देखो प्रमाण सुन्दरदासजी कहे हैं:-

**दोहा-"निंदा स्तुति है देहकी, कर्म शुभाशुभदेह ॥**
**सुंदर ज्ञानी ज्ञानमय, कछुह न जाने येह ॥"**

ज्ञान विलास

क्या कहते हैं, वह ब्रह्मज्ञानी सब कर्म करके अकर्ता अभोक्ता रहता है, ऐसीही ज्ञानकी नीव पक्की ( मजबूत ) कहना ? इसी जड, विभ्रम अवस्थाका परिणाम ऐसा होगा कि, जड अजगरादिक वा जड पृथ्वीमें उत्पन्न कृमि, कीट आदिक जड योनिमें

वह सब देह धरेंगे, क्योंकि, ब्रह्म व्यापक वहां नहीं हैं क्या ? वाहजी ऐसी उन्मत्त पागलकी नाई पिशाचवत् दशा होना ? ऐसी स्थिति शुद्ध कहनेवाले तुम लोगोंको कुछ शरम नहीं लगती ? दारुकी दोसी चढायके तो नहीं आये हो ? कैसा सृष्टिके पक्षपाती लोग बने हैं भाई !

शास्त्री महाराज बोले:–देखो, साधुबावा, जैसा बाजीगर सर्पके जहरी दांत गिराय, पिटारेमें रख, उसीका तमाशा जगतको दिखाता है, फिर वह सर्प काटा तो भी उसीका विष व्यापता नहीं। और जैसा दक्षिणमें नाटक खेल करते हैं, उसीमें राजा राणी, चोर, गुलाम इत्यादिक अनेक स्वांग धरके प्रत्यक्ष स्वांग-चेष्टा सच दिखाते हैं, और बहुरूप वा नटवा नाना स्वांग धरके अनेक स्वांगचेष्टा सांचकी नाई करता है, परन्तु अपने स्वरूपको भूलताही नहीं। सुनो सुंदरदासजी कहे हैं।

**दोहा–क्षुधा तृषा गुनप्रानके. शोक मोह मन होइ ॥**
**सुंदर साखी आतमा, जाने बिरला कोइ ॥"**

ज्ञान विलास

देखो, तैसाही ब्रह्मज्ञानीभी, भूख प्यास प्राणके धर्म, सुख दुःख अंतःकरणके धर्म, शोक मोह, पाप पुण्य, कर्ता भोक्ता, सब मनके धर्म, जन्म मरण, स्वर्ग नरकादिक बुद्धिके धर्म, इसी प्रमाण इंद्रिय और उन्होंकी देवता देह व्यवहार चलावते हैं, ऐसी परस्पर

सब व्यवस्था लगाय, आप अकर्ता, अभोक्ता, निर्लेप, शुद्ध, दीपकवत साक्षी रहते हैं। याते उन्होंके प्रारब्धभोगसे शुभ अशुभ, कर्म अकर्म, कोई भी हुये तो ब्रह्मज्ञानी उसीमें भूलते ही नहीं। इसीका प्रणाम सुनोः—

**श्लोक-कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी, राजानौजनक राघवौ॥ वशिष्ठःकर्मकर्ताच,त एते ज्ञानिनः समाः**

भावार्थ ऐसा है, कृष्ण भोगी. शुक त्यागी, रामचन्द्र और जनक राजा ये राज्य व्यवहार नीति अनीति आदिक कर्म करनेवाले, वसिष्ठ कर्ममार्गी; इनकी स्थिति प्रारब्ध भोगसे जो भी न्यारी न्यारी रही, तोभी सर्वोंकी समान गति जीवन्मुक्त दशा और चोला छूटे उपरांत विदेह मुक्त हुये ऐसा वर्णन है। ताते ब्रह्मज्ञान पूर्ण स्थिति भये उपरांत सदोदित शुद्ध निवृत्ति रूप आचरणसे चलनाही चाहिये, ऐसा कुछ नियम नहीं। याज्ञवल्क्य, शिखरध्वज, बलिराजा, प्रह्लाद, अर्जुन, व्यास इत्यादिक बहुतेरे ब्रह्मज्ञानियोंको संसार व्यवहारमें विशेष प्रवृत्ति भई है। याहीते किसीका प्रारब्ध कर्म भिक्षा भोजन, वस्त्र, जल, इतनेही हेतुका रहता है, और किसीका विशेष हेतुका रहता है परन्तु दोनोंभी ब्रह्मज्ञानियों की मुक्ति समान रहती है, इसीमें रंचकभी अन्तर नहीं।

साधु बोले-देखो महाराज भगवद्गीताका प्रमाण ऐसा है—

अर्धश्लोक—"ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुःपंडितं
बुधाः ॥" अ० ४ श्लोक १९

इसी प्रमाण अनेक जन्मका अज्ञान अर्थात् पंच विषयोंकी आसक्ति जो संचित कर्म, सो ज्ञान अग्निसे जलाय दिया । और नानाकर्मोंका वासनारूप अंकुर क्रियमाण कर्मभी पुरुषार्थसे नाश कर; ब्रह्मज्ञानी न्यारा हुवा ऐसा कहते हैं । देखो, तुलसीदासजी कहे हैं:—

चौपाई—"काम वात कफ लोभ अपारा ॥
क्रोध पित्त निज छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जो तीनों भाई ॥
उपजै सन्निपात दुखदाई ॥"

रामायण उत्तरकांड

परन्तु ब्रह्मज्ञानियोंका प्रारब्ध कर्म देह निर्वाह हेतुमात्र अन्न, वस्त्र और जल छोडके जगनिंद्य क्रिया काम, क्रोध और लोभ मिश्रित सन्निपात कर्म क्यों नहीं छोडे गये ? देखो, सुन्दरदासजी कहे हैं:—

चौपाईछंद—"नरकहि रचे नरकको कीडा ।
चंदन ताहि न भावै जूं ॥"

सुन्दर विलास काव्य

इसी प्रमाण, विषयकामवासना स्त्रीभोगरूप नरककुंडमें पचना अथवा जीतेही भगरूप नरकवासकी विषयकामना क्यों नहीं छूटी ? और ऐश्वर्यभोग राजनीति नहीं, तो अनीति निर्दयपनासे किसीको फांसी देने, नानादण्ड करने, कैदमें डालने, अपनेही बलसे रणमें संग्राम कर कितनेक जीवोंको हनके दुःख देने, ऐसे क्रोधरूप कर्ममें और राज्यलोभमें क्यों विशेष प्रीति रही ? देखो ! तुलसीदासजी कहे हैं:—

चौपाई-"खिल विश्व यह मम उपजाया ॥
सबपर मोरि बराबर दाया ॥"

रामायण बालकांड

तात्पर्य, श्रीकृष्णका अर्जुनको सब जीवोंपर समान दयाभाव रखना ऐसा उपदेश भया, और आपनेही अर्जुनको सहायता देके अथवा श्रीकृष्ण राम, परशुराम, आदिकोंने अपनेही हाथसे कोटिन जीवोंको रणमें हनके दुःख दिये हैं । तो ऐसे महातामसी कसाईवत् निर्दयी कर्म किये हैं, तो भी उन्होंको ईश्वररूप पूर्ण ब्रह्म अवतारही कहना शोभता है । संचित और क्रियामाण कर्म रूप' सिंह नाहर आदिक भयंकर क्रूर पशु सहजही मारके अलग किये, परन्तु प्रारब्ध कर्मरूप ससा, हरिण आदिक दीन गरीब जीव मारनेको मुंहसे शब्द न फूटने और हाथ पांव थरथर कांपने लगने, वाह जी क्या आश्चर्य है । देखो, जैसा रणशूर विद्वान, न्यायाधीश

वा कोई हुद्देवाला मनुष्यकी बाहर बडी कीर्ति परंतु घरमें थोडासा द्रव्य खर्च कर लाई हुई खिलौनावत् स्त्रीरूप मेहरी सच्ची दासी, परन्तु राणी सरकार बनवाय आपन दीन बिल्लीवत् बन, हाथ जोड, गुलामकी नाई वा बाजीगरके बंदर सरीखे जो चाहिये सो मेहरीका हुकुम मान, नानाकर्म करनेको सदा हांजी हांजी करके, सामने हाजिर रहते हैं। क्यों कि, महान भगंलपट, हाड चामके प्रत्यक्ष कीडेही बने हुये ! वही भगलंपट संसारी अज्ञानी लोगोंका मार्ग ब्रह्मज्ञानी लोगोंने उठाया, तो वह, ब्रह्मज्ञान अथवा डामर वा भिलावाका कभी जलदी न छूटनेवाला पक्का कला दाग क्या कहते हो ? विवेक विचार, वैराग्य, शांति आदिक सब शुद्ध गुण जलायके मट्टीमें मिलाना ! और बनजाना स्त्रीके गुलाम ! देखो भगवद्गीताका प्रमाणः—

श्लोक—"यत्तदग्रे विषमिव परिणामेमृतोपमम् ॥
तत्सुखंसात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥"
अध्याय १८ श्लोक ३७ ।

भावार्थ ऐसा है आरंभमें बडा दुःख और परिणाम सुखदायक निकले, सो सात्विक सुख ज्ञानप्राप्तिका हेतु है। परंतु शम दमादिक चतुष्टय साधनका दुःख सहिके उसीका ऐसा सुखरूम परिणाम काला अंधकार विषयासक्त बुद्धि होना ? तुम कहोगे कि धर्मपत्नी है कुछ दोष नहीं। परंतु "आत्मावै पुत्रनामासि" थे

श्रुति प्रमाणसे एक पुत्र उत्पन्न किये उपरांत वह मेहरी मातासमान हो गई, फिर मेहरीरूप मातासे खोटा कर्म होना ? काहेको वेदमर्यादा, श्रुति, स्मृति आदिक थापे हैं ? कहो भला, कौनसा ब्रह्मज्ञानी शुद्ध चालसे चला है ? सो आयुष्य घटाना बढाना शुभ अशुभ गुण धरना छोडना इत्यादिक पुरुषार्थसे जो चाहिये सो सिद्ध होगा, ऐसा रहिके निंद्य प्रारब्ध कर्म ज्ञानियोंको दीन करते हैं, ये कितना आश्चर्य कहना ? इसीका कारण जड चैतन्य स्थावर जंगमादि सब पदार्थोंमें ब्रह्म व्यापक मैं भरा हूं इंद्रियोंका कर्म इंद्रिय जानै, मैं सदोदित न्यारा, ऐसा ठहराये हैं नहीं क्या ? परन्तु चैतन्यकी सहायता विना जड इंद्रिय आपही आप कैसे देहव्यवहार कर सकेंगे ? जो व्यवहार चलाताही है, तो पशुवत् निंद्यकर्म होनेवालेही ठहरे । और 'अंते मतिः सा गतिः' कहिये ऐसे कर्मके अनुसार अंतमें वासना रहिके जड पशुजन्म होनेवालेही ठहरे नहीं महाराज ।

शास्त्री महाराज बोलेः—वाहजी साधुबाबा, व्यर्थ भकुवाकी नांई मनमाने वैसी बरावर क्यों करते हो ? देखो, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनकादिक मुनि, दशों अवतार, व्यास, शुक, दत्त, वसिष्ठ और ऋषि मुनि आदिक अनेक ब्रह्मज्ञानी मुक्त हो गये हैं । उनका व्यवहार संसारी मनुष्यवत् जो भी हुवा है तो भी वह अंतरमें शुद्धही थे । देखो, तुलसीदासजी कहे हैं:-

चौपाई--"कर्म शुभाशुभ तुमहिं न बाधा ॥
अबलगि तुमहिं न काहू साधा"
"समरथको नहिं दोष गुसांई ॥
रवि पावक सुरसरि की नांई ॥"

रामायण बालकांड

भावार्थ ऐसा है. जे ब्रह्मरूप भये हैं सो समर्थ पुरुष हैं। वह सूर्य, अग्नि और गंगासमान शुद्ध पवित्र हैं। किसी प्रकारसे उनको दोष लगानेको जगाही नहीं। उनकी महिमा वही जानें, अथवा उनकी कृपासे उन समजान जो होजाय सो जाने, ज्यादा कुछ भी कहा नहीं जाता।

साधु बोले:--शास्त्रीजी, आप कहते हो सो ब्रह्मज्ञानी हुए सही, परन्तु स्त्रियोंके मोहफंदमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम कृष्णादि अवतारी देवता, जनक राजा वशिष्ठादिक फँसेही तो थे। देखो, तुलसीदासजी कहे हैं:--

दोहा--'अवगुनमूलशूलप्रद, प्रमदासबदुखखानि'

रामायण आरण्यकांड

इसी प्रमाण सब अवगुणका और दुःखका मूल स्त्री केवल अग्निवत् सो ब्रह्मज्ञानियोंने पीठ कसके बांधी थी, ता जलानेवाली सहजही ठहरी नहीं भला! और देखो, सुंदरदासजी कहे हैं--

छंद--"जोबनके मदमाते गिनत न कोउ बातें ॥
कामवशकामिनीके हाथही बिकायो हैं ॥
सुंदरविलास

तो बगलमें दवाये हुये स्त्री और कहते हो ब्रह्मज्ञानी ये कैसा बनेगा ! सुनो, और तुलसीदासजी कहे हैं:--

चौपाई--"नारि मुई घर संपत नासी ॥
मूंड मुँडाय भये संन्यासी ॥"
रामायण उत्तरकांड

ताते कोई नारी मर गई और घरकी संपत्ति नाश हुई, तब संन्यासी होके ब्रह्मज्ञानी भये हैं। और कोई बाल ब्रह्मचर्य्य व्रत धार, मोटी स्त्री माया त्याग, पंच तत्त्वरूप सकल व्यापक आत्मा मान, विधि निषेध सब कर्म छोड, जगतका सूक्ष्म बीज 'अहंभाव' सिद्धांत ठहराये। परन्तु शुद्ध निर्विकल्प परब्रह्मपद, अखंड सच्चिदानंदरूपमें इच्छारूप अहं स्फूर्ति या आदिमाया स्त्रीरूप, उसी ब्रह्मके अर्ध अंगमें लपटी हुई है ही। याहीते शुक, दत्त, अष्टावक्र, वामदेव, सनकादिक पूर्ण ब्रह्मवेत्ता पुरुष सूक्ष्म इच्छारूप अध्यासमात्र मायाजालमें फँसेही थे। ऊपरकी चर्मदृष्टि और अन्तरकी विवेक विचारादिक ज्ञानदृष्टि गमाय, जडपशुवत् कर्माचरण खानीमें जावेंगे नहीं क्या ? क्योंकि भोजन, आच्छादन और मैथुन कर्म ये तीन स्थूल पशुकर्मोंकी आसक्ति छूटी थी, परंतु भय, निद्रा

और मोह ये तीन सूक्ष्म पशुकर्म तो थे ही। देखो, फिर जन्म लेनेको भ्रममें सूक्ष्म अहंतारूप इच्छा अध्यास सोई भय, जड और चैतन्यकी एकतारूप उन्मत्त स्थिति वा गाफिली सोई निद्रा, और अहंब्रह्मास्मि सिद्धांत 'सूत्र मणि न्याय' व्यापक, सोई प्रिय वा आनंदरूप वेदादिक शब्दोंका मोह, ये तीन सूक्ष्म पशुकर्म छूटे थे क्या ? कुछ सांच और झूठेकी पारख करी, वेद पक्ष, शास्त्र पक्ष, पुराण पक्ष, देवतोंका पक्ष, ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंका पक्ष, स्त्रीरूप मायाका पक्ष, ऐसे हठसें पक्ष पकड, न्यायभी होवेगा पक्षही पकडके नहीं क्या ? विवेक, विचारकी सूक्षम तराजू लेके, हृदयमें अच्छे न्यायको तौलो, हक नाहकही दूसरेको दोष लगाते हो !

विदूषक बोलाः--वाहजी, अच्छी कमाल की, इसीकोही कहना ब्रह्मज्ञान ! वा बरबस मारपीट करके हिंदुवोंको सुन्नत कर, मुसलमानही बनाना ! ऐसे ऐसे बडे बुद्धिमान चतुर परन्तु पक्षकी खैंचाखैंचीसे अन्तमें गिरगये गर्भकूपमें ही ! मनुष्य पशु, जड चैतन्य, गार हीरा, समान एक टका सेर बिकरी ! पारख तो पक्की पूरी ! हां हां बाबा लोग, आगेका तरंग देखो तब सच क्या है सो सूझेगा ऐसा न्याय सुनके कभी घबराना नहीं ?

ऐसा विदूषक बोले उपरांत सब चले गये और चित्रपट गिराया।

---

# तरंग सातवां ।

## ( सत्यज्ञान रहनी और जीवन्मुक्त स्थिति )

प्रारम्भमें विदूषक चित्रपट खोल बाहर निकल आया ।

विदूषक बोलाः--बाहजी, पूराशूर, सत्यन्यायी, निरहंकारी, शुद्ध चैतन्य जीवपदको ग्रहण करनेवाला, वही मनुष्य, वही सद्गुरु, वही एक धन्य है । ऐसे सद्गुरुके उपदेशरूप सहज कृपासे अन्य जीवभी देहबंधनसे मुक्त होते हैं ! कितने भला उनके उपकार ? परन्तु ऐसा सत्यन्यायी सद्गुरु मनुष्य जगतमें कौन होयगा भला ? हीराकीनांई बहुतही बिरला मिलेगा नहीं भाई ?

इतनेमें एक संन्यासी बैरागी आये ।

संन्यासी बोलेः–शाबास विदूषकजी, कैसा तू बोला अति निर्मल, निर्णयरूप ? ऐसे सद्गुरु जगतमें कोई बिरलेही रहते हैं इसमें रंचकभी संशय नहीं । कहा हैः—

श्लोक--शैलेशैले न माणिक्यं मौक्तिकंनगजेगजे
साधवोनहिसर्वत्र चंदनं न वने वने ॥

सारांश, पर्वत बहुत हैं, परंतु माणिक, हीरा, लाल, इत्यादि रत्न कोई बिरलेही पर्वतमें उपजते हैं । और गजमोती और मलयागिरि चंदन बिरलेही जगह रहते हैं । तैसेही गुरु बहुत हैं; परंतु सद्गुरु मुक्तिदाता मिलना बहुतही दुर्मिल है सृष्टिमें मुख्य

सात प्रकारके गुरु हैं। पहिला गुरु, जन्म देनेवाले मा बाप; दूसरा गुरु, गर्भसे बहुत युक्ति कर, बालककी गर्भके बाहर निकाल, कान, नाक, मुंह फूंक २ धोय धोयके सफा करनेवाली दाई; तीसरा गुरु बारहवें दिन बालकका नाम धरानेको बतानेवाला ब्राह्मण, जिस नामसे सब लोग पुकारते रहते हैं और देह छूटे उप रांत कितनेक दिन जगतमें वही नाम चलता रहता है । चौथा गुरु, कोई एक जगत् रीतिप्रमाण विद्या वा कला सिखावा, पेटधंधाको लगानेवाला; पांचवाँ गुरु, रामकृष्णादिक गुरुमंत्रदीक्षा देनेवाला; छठवाँ गुरु सब कर्मभ्रम तोड एक ईश्वरप्राप्तिकी साधना वा ब्रह्मज्ञान उपदेश दाता; और सातवाँ गुरु कहा है, सुनोः—

**अर्ध श्लोक "धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी**
**शांतिः सदा गेहिनी सत्यं पुत्रमिदं दया**
**च भगिनी भ्राता मनःसंयमः" ॥**

भावार्थ ऐसा है, धीरज, क्षमा, शांति, सत्य आदिक शुद्ध लक्षण प्रगट हुये तो वही ईश्वररूप ठहरानेवाला ऐसे मुख्य सात गुरु जगतमें हैं परन्तु ऊपरके सातही गुरु देहके साथ नाश होनेवाले जड वस्तुवोंकेही उपदेश दाता हैं कोई कहेगा कि, देवताभी नाशमान हैं क्या ? तो देखो सुंदरदासजी कहे हैः—

**दोहा--"स्वप्न सकल संसार है, स्वप्नातीनों लोक"**

सुन्दरविलास काव्य

और "यद्दृष्टं तन्नष्टम्"

इति श्रुतिः

अभिप्राय ऐसा है, तीन लोक, देवतादिक व कल्पना मिथ्या नाशमान देह व्यवहार देहके साथ चलाजायगा । देखो, और सुंदरदासजी कहे हैं:—

चौपाई छंद—"सकल वियापक अरु सर्वंग ॥
दीसे संगी आहि असंग "॥

सुन्दर विलास काव्य

अथवा निश्चलदासजी कहे हैं:—

दोहा—"अन्तर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ॥
विभु नभसम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥"

विचारसागर चतुर्थतरंग

याहीते स्थावर जंगम, कीट पतंग, अन्तर बाहर, आगे पीछे, सबमें व्यापक और सबसे न्यारा, आत्मरूप दिखावेगा, सोई जन्म मरण भवसागरसे पार उतारेगा ।

इतनेमें एक सत्यन्यायी साधु आये ।

न्यायी साधु बोले:--देखो संन्यासी महाराज, आपका विचार तो बहुत उत्तम है । परन्तु अपने देहपरसे सकल ब्रह्मांड रचना देख लेना चाहिये । जैसे देहमें पंचतत्त्व हैं तैसेही ब्रह्मांडमें हैं ।

और सुनो, दश इंद्रिय और उनके पंच विषय मिलके स्थूल देह है। और पंचप्राण, मन, वित्त, बुद्धि, अहंकार ऐसे मिलके सूक्ष्म देह है। याते स्थूल और सूक्ष्म दोनों जड देहको चैतन्यसत्ता वा चलनशक्ति देनेवाला, जीवही आत्मा है नहीं क्या ? देह जड और आत्मा चैतन्य, दोनों स्थावर जंगम एकत्र व्यापक और फिर न्याय कैसा सिद्ध करते हो ?

संन्यासी बोले:--सुनो बाबाजी, जैसे मनुष्येक आधारसे चकमक ठोकेते कफमें अग्नि प्रगट होता है, तैसे अधिष्ठान कूटस्थ वा आत्मा आधारसे बुद्धिरूप दर्पणमें जो प्रतिबिंब प्रगट हुआ, सोई आभास जीव है अथवा कूठस्थ वा आत्माके सहज स्वभावसे मनकी फुरना हुई सोई चैतन्य जीव है। सो आभास जीवकी सात अवस्था हैं। प्रथम अवस्था, मैं आत्मा कुछ जानताही नहीं सो अज्ञान; दूजी अवस्था, आत्माहै नहीं ना भान होवै सो आवरण; तीजी अवस्था, जन्म मरण, सुख दुःख, पाप पुण्य, मेरेको होते हैं ऐसा भासै, सो भ्रांति वा शोक, चौथी अवस्था, आत्मा नहीं है ऐसा अज्ञान दूर हो, आत्मा है ऐसा भान होवै सो परोक्षज्ञान; पांचवीं अवस्था, आत्मा मैं स्वतः हूं ऐसा ज्ञान होवै सो अपरोक्ष ज्ञान; छठी अवस्था जन्म मरण, सुख दुखादिक संसार धर्म मेरेमें नहीं हैं, जैसे लोहार अहिरनपर लोहेकी नानावस्तु बनाते हैं, परंतु अहिरन सदा न्यारीही, तैसा मैं कूटस्थ

अधिष्ठान आत्मा अजन्मा हूं ऐसा ज्ञान होवे, सो शोक वा भ्रांति-नाश; और सतई अवस्था, संशय रहित होनेसे जो अति आनन्द होवे सो हर्ष; ऐसी सातों अवस्थावोंका जालना आभास वा प्रतिबिंबरूप जीवमें है इस वास्ते चैतन्य वा सात अवस्था जाननेवाला जीव कूटस्थ अथवा आत्मा कैसा होवेगा ? सुनो भगवद्गीताका प्रमाणः--

**श्लोकक्राचरण-'अजो नित्यःशाश्वतोयं पुराणः'**

अध्याय २ श्लोक २०

आत्मा तो अजन्मा, असंग, अकर्ता, अभोक्ता, नित्य, पुराण पुरुष है, उसी आत्माको आप जीव कैसे कहते हो ?

न्यायी साधु बोलेः--सुनो संन्यासीजी; जैसा अफीमका अमल न अफीम है न मनुष्यमें है, तो अफीम और मनुष्य दोनोंके संबंधमें है । तैसे जीव और पंचतत्त्वोंके संबंधमें सब जड विकार खड़े होते हैं । देखो, सुन्दरदासजी कहे हैं:-

**दोहा--"सुंदर चेतनआपयह, चालतजडकीचाल ।**
**ज्यौंलकडीकोअश्वचढि,कूदतडोलतबाल॥"**

ज्ञान विलास

सारांश, जीव अन्तःकरणरूप आकाशतत्त्वमें मिलके, मैं निर्विकल्प महा आनंदरूप आत्मा हूं ऐसा मानता है । चित्तरूप वायुतत्त्वमें मिलके, मैं सहविकल्प सर्वत्र व्यापक साक्षी ब्रह्म हूं,

ऐसा अनुमान करता है। बुद्धिरूप पृथ्वीतत्त्वमें मिलके, निर्विकल्प और सहविकल्प दोनों छोड, जैसेका तैसा, अर्थात् सजातीय कहिये अपनी मनुष्य जाति, विजातीय कहिये पशु, पंछी, वृक्ष, पाषाण आदिक अन्य जाति, और स्वगत भेद कहिये अपने इंद्रिय आदिक कोई देह भागका भेद न रख, मैं एक अखंड ब्रह्मरूप चर अचर, सर्वत्र व्यापक हूं ऐसा मानता है। मनरूप जलतत्त्वमें मिलके, कल्पनासे दूसरा ईश्वर स्वर्गादिक ब्रह्मांडमें ठहराता है। अहंकाररूप अग्नितत्त्वमें मिलके प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर सब पंचतत्त्वोंका प्रपंच व्यवहार, अथवा अपना देहही मैं हूं ऐसा अध्यास रखता है। कहीं सूक्ष्म वायुरूप शब्द विषयमें मिलके, श्वासामें सोहं, शब्द फुरना वा निःअक्षर शब्द मेरा रूप, कहीं प्रणवरूप ओंकार शब्द ब्रह्म, सर्वत्र विश्वव्यापक मेरा रूप, कहीं कर्णद्वारा सुननेमें आता हुवा, मस्तक वा ब्रह्मांडमें सूक्ष्म रँ रँ ऐसा अनहद बाजा धुन मेरा रूप मानता है। और कहीं वायुका स्पर्श विषय आनन्द मेरा रूप; कहीं योगधारणासे ब्रह्मांडमें ज्योति प्रकाश भासता है सोई मेरारूप; कहीं भक्ति प्रेमसुख जलका रस विषय मेरा रूप, कहीं धातु, काष्ठ, पाषाणादिक प्रतिमा मूर्ति अथवा वट, पीपर, तुलसी आदिक झाड वा लिंगरूप पृथ्वी केवल गन्धका विषय मेरा रूप; ऐसा जो जो तत्त्वोंका भास, अध्यास, अनुमान कल्पना जीव करता है, सोई स्वरूप मैं हूं ऐसा मान लेता है। परन्तु जैसा

अफीमके अमलमें मनुष्य धुंध रहता है, तैसाही पंचतत्त्वोंके पंच विषय अमलमें जीव धुंध गाफिल हो जाता है। सारांश--ब्रह्म,ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, ये सब जड देहविकार हैं। ऐसेहीकल्पित नाना देवता,वेद,शास्त्रादिक नानाशब्दजाल,और वेददर्शक नानामार्ग उसीमें कर्म,उपासना,सगुण निर्गुण भक्ति,हठ, और राजयोग ज्ञान विज्ञान, ये मुख्य मार्ग: और तीर्थ, व्रत, जप, तप, ध्यान, मंत्र विद्या, कला, नाम, जाति, कुल, वर्ण, आश्रम, नानापंथ, नानामार्गके भ्रमिक गुरुवोंके उपदेश इत्यादिक जितने देहके संबन्धसे विकार खडे हुए हैं, सो सब जड हैं। इस वास्ते ये सब पंचतत्त्वोंके नाना भास जीव कैसा होयगा ? 'कभी नहीं होनेका तैसेही पंचतत्त्वोंका नाशमान देह वा ब्रह्मांडके पंचतत्त्व सो भी सकल जड हैं। तत्त्वोंको अपनी चैतन्यशक्ति वा चलन सत्ता जीव देता है, ताते सब तत्त्वभी चैतन्यवत् भासते हैं, परंतु स्वत: जडही हैं। विचार करो और परखो, एक सृष्टिमें जीव नहीं तो सब निर्जीव जड पंचतत्त्वोंका आडम्बर खडा है। और जीव बिना ऐसा तो भी कौन कहै वा किसको अनुभव होय ? इसीते सर्वोंके गुण अवगुण जाननेवाला चैतन्य कहिये ज्ञानीयरूप जनैया जीवही श्रेष्ठ है, ऐसा हमारी समझमें आता है। कहो तुमको कैसे प्रतीति है सो ?

संन्यासी बोले:-महाराजजी, आप जो सत्य निर्णय करके कहे हो, तैसा अब हमकोभी सच्चा जान पडता है। क्योंकि जब

शरीर छोड जीव न्यारा हो जाता है, तब मुरदामें मांस रहता है सो पृथ्वीतत्त्व, देहका पानी जलतत्त्व, पित्त अग्नितत्त्व वा शरीर खुलानेवाला धनञ्जय वायु वायुतत्त्व और शून्य वा पोल भाग आकाशतत्त्व, ऐसे पञ्चतत्त्व देखनेमें आते हैं । परन्तु श्वास उच्छ्वास गति, चलना बोलनादिक और कोई क्रिया, अथवा कोई पदार्थ जाननेका ज्ञान रहताही नहीं । याहीते चैतन्य जीव न्यारा औरा सब पंचतत्त्व न्यारे हैं ऐसी हमारी पूर्ण खात्री होगई । परंतु वेदशास्त्र कर्तादिक सिद्धांतमें ऐसा निर्णय न करते, एक अद्वैत ब्रह्म सर्वत्र व्यापक जल तरंग न्याय' क्यौं ठहराये हैं ? बडे बडे अच्छे महात्माओंकी बुद्धि कैसी कुण्ठित होगई ? अच्छा महाराज वह रहने देव, परन्तु पञ्चतत्त्व, तैसेही पृथ्वी और जल मिलके उत्पन्न हुवा रजोगुण, अग्नि वायुसे उत्पन्न हुवा सत्वगुण और केवल आकाशतत्त्वसे उत्पन्न हुवा तमोगुण, ऐसे पञ्चतत्त्व और तीनगुण जीव नहीं, ऐसी हमारी समुझ हुई । परन्तु कोई वीर्य, कोई तेज, कोई श्वास, कोई रक्त, तम और शून्य ऐसे नानाप्रकारसे जीवको सिद्ध करते हैं । तो देहमें हम जीव क्या वस्तु जानना सो कहो महाराज ?

न्यायी साधु बोलेः-देखो संन्यासीजी, आपही इसीका पूर्ण विचार करो । जब जड पञ्चतत्त्व जीव नहीं हैं, तब जड पञ्चतत्त्वरूप देहके भाग, वीर्य, तेज श्वास, रक्त, तम कहिये अंधकार

और शून्य केवल पोल आकाश सो जीव कैसा होयगा क्या ? बहु तेरे ज्ञानीलोगोंने श्वासको जीव ठहराया है । परन्तु जैसा लोहार चमडाके दो भातीसे फूंकता है, तब भातीद्वारा पवन चलने लगती है, तैसाही देहरूप भाती है और नासाके दो छिद्र सोई भातीके-द्वारे हैं, परन्तु देह भातीको फूँकनेवाला वा श्वासको चलनशक्ति देनेवाला जीव न्याराही है । सो श्वास वा प्राण वायु जीव कभी होनेका नहीं, क्योंकि श्वाशरूप वायुतत्त्व जडहै । तैसेही हठ वा राजयोगमें मन और श्वासकी बहुत दिन दृढ एकाग्रतासे हृदय और मस्तकमें दीखता हुवा अंगुष्ठमात्र निर्गुण प्रकाश ज्योतिरूप ईश्वर मानना, अथवा भक्तिमार्गमें मानसी पूजा वा ध्यानसे हृदयमें वैसीही अंगुष्ठमात्र दीखती हुई साकार निर्गुणमूर्तिप्रकाश ज्योतिरूप ईश्वर मानना अथवा ब्रह्मज्ञानमें वही ज्योतिरूप शब्दका प्रकाश आकाशवत् सर्वत्र समान व्यापक ब्रह्म ठहराना, ये तीनों प्रकारसे देहके भासरूप प्रतिबिंबकोही आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर वा चैतन्य कहते हैं । परन्तु भक्ति योग और ब्रह्मज्ञान मार्गसे प्रतिबिंब स्वरूप आत्माको देख, आनंदित होता हुवा जीव, वायुके स्पर्शविषय आनंदको जानता सदा न्याराही है । इसवास्ते शरीरके पंचतत्त्व और पंच तत्त्वोंका कोई भाग जीव रहता तो चोला छूटते समय जीवकाभी नाश हो जाता, परन्तु वैसा कभी होता नहीं । देखो भगवद्गीताका प्रमाणः—

**अधश्लो-'ममैवांशोजीवलाकेजीवभूतःसनातनः''**

अध्याय १५ श्लोक ७ ।

श्रीकृष्ण अर्जुनको कहे हैं, मेराही अंश जीव सदा सनातन नित्य है. और ऐसी प्रतीतिभी होती है । क्योंकि, "जीवतीति जीव:" कहिये जो सदा जीवित रहता है, याते नाम जीव पडा है । सो जीव अमर , अनादि, अविनाशी, चैतन्य, ज्ञानीरूप, और सब तत्त्व नाशमान, जड है । याहीते स्थूल वा सूक्ष्म देह और सब सृष्टिको केवल जाननेवाला, जनैया ज्ञानमात्र सोई जीव है । देह मैं हूं और देहकी सहायतासे उत्पन्न हुये, ब्रह्म,ईश्वर आत्मा, परमात्मा. नाना देवता, ये सब जड भास मेराही स्वरूप है ऐसा जीव मानता है, सोई जीवको बन्धन हुवा है । 'सबकी सुनना और दिलकी करना' ऐसा विचार पक्षरहित निज दृष्टिसे शुद्ध होना चाहिये । परन्तु ऐसा न होनेसे बडे बडे ग्रंथकर्ता और महात्मादिक वेद....शास्त्रोंका पक्ष पकड, फूलके सर्वत्र व्यापक ब्रह्म ठहराये; और ऋद्धि सिद्धि, मान बडाई आदिकोंमें भूल, अपने मनुष्य जन्मका घातकर लिये हैं । इसीते सत्य ठौरठिकाना न लगके, अंतमें ज्ञान प्राप्तिका सब पुरुषार्थ धूलमें मिलाये हैं । अच्छा दिलमें शोधके न्यायसे विचार करो कि सच है तो भी क्या ?

संन्यासी बोलेः-सुनो साधु महाराज! सुंदरदासजी कहे हैं।'

कवित्त--"पानीकेमथेते कहूँघिउ नहीं पाइयत
कूकसके कूटे कहूँ निकसत कन है॥"

सुंदर विलास

येही दशा सर्व ब्रह्मज्ञानियोंकी भई, किसीको जन्ममरणसे छूटनेका सच्चा मार्ग एकभी मिला नहीं, ऐसा आपकी कृपासे थोडा थोडा हमकोभी समझने लगा है। परंतु क्यों हो, ऐसा स्वतःसिद्ध जीव ज्ञानस्वरूप होके, हाड, मांस मल, मूत्ररूप, महा दुर्गंधकी खानी जो जड मनुष्यदेह, सो देहरूप बंदीखानेमें फँसके, जन्ममरणका दुःख कैसा भोगने लगा? नरक वा महा दुःखमें रहनेकी किसीकी चाह या खुशी है क्या! तो ऐसी खुसी न रहिके, बरियाईसे देहरूप कैदखानेमें डारनेवाला दूसरा ईश्वर वा कोईभी जीवको उत्पन्न कर्ता जरूरही चाहिये। आप जीवही सब जगतका नायक या मुख्य मालिक कहते हो, सो कैसा हो सकता है?

न्यायी साधु बोलेः-सुनो संन्यासीजी, जैसा कोई मनुष्य अपने ऐश्वर्यमें फूलके, बडे होससे विवाह कर घरमें स्त्री लाता है। उपरांत उसीके मोहफांसरूप विषयानंदमें आसक्त हो, दो चार बेटा बेटियां भयेबाद, दिन रात तेलीके बैलवत् वा भाडेके टट्टूवत

बडे कष्टसे द्रव्य कमाय संसार चलातारहता है। अनंतर कोई बडे संकट समय पश्चाताप ( शोच ) कर, मनमें बडा उदासा हो कहता है कि, जो मैं विवाह न करता तो बडे चैनसे सुखी रहता, अब कैसा महादुःखमें आय फँसा हूँ परंतु 'करने गया खुसी और जगमें हुई हँसी' देखो. जो, मैं प्रथमही अच्छा सावधान रहता तो अन्न, वस्त्र, द्रव्य आदिक कमानेका दुःख कष्ट सहिके, त्राहि त्राहि कर, ऐसा फजीता होनेका अबक प्रसंग क्यों आता ? मैं एक तो बालपनमें मूर्खही था; और मेरा विवाह करनेवाले महामूर्ख थे, ऐसा कहिके पछताता है। परंतु ' आय फँसी गैया और मारी जाय भैया' ऐसा बेबस हुवा क्या करे बिचारा ! फिर पूरी वैराग स्थिति न होनेसे आंखि छुपाय, वैसाही संसार दुःख सहन करता है। अब तुमही विचार करो ऐसे दुःखमें उसीको किसने बांध रक्खा है क्या ? सब प्रपंच खटखट छोड जो न्यारा हो जाय, तो सहजही टहू सकता है। परंतु अब उसीको ऐसे दुःखसे छूटना बडा कठिन हो जाता है क्योंकि, मायामोहमें विशेष लपट गया। देखो, जन्मके साथ आदिमें न लाया हुवा, और मरण बेर अन्तमें साथ न चल-नेवाला ऐसा उसीने मध्यमें खडा किया हुवा स्त्री, पुत्र, धनादिक संसार, प्रत्यक्ष चार दिनका तमाशा और यह मनुष्य भी चार दिनका पाहुना, परन्तु संसारसुखके बडे मोह फांसरूप केवल कच्चे सूतके

धागासे फिर बंधनमें बँध जाना क्या ? तैसा जीवभी अनादि सिद्ध ज्ञाता और सच्चा खुला रहिके, धीरज, दया, शील विचार और सत्य, ऐसे मनुष्य देहके शुद्धगुण संयुक्त पंचतत्त्वोंके सूक्ष्म देहरूप ब्रह्मांडमें सिद्ध कला धार, स्वेच्छासे सुखरूप था क्योंकि, और कुछ जड बन्धन उसीके पास थाही नहीं, और ये महा दुःखरूप सृष्टि कभी उसीने देखी न थी अपने आनन्दमें सुखरूप था । परंतु जैसा कोई मनुष्य दर्पणमें अपने मुँहका दूसरा प्रतिबिंब देखके कैसा मैं शोभायमान हूं ऐसी अहंता धारण कर बडा आनंद मानता है । सचमुच उसका मुह और मुंहका प्रतिबिंब दोनों नाशमान रहिके, उसी प्रतिबिंबकोही अपना स्वरूप मानके भूल जाता है तैसेही कोई एक समय जीवने अपने शुद्ध सूक्ष्म पंचतत्त्वोंको विचारदृष्टिसे निहार, कितना मैं विचारवान, दयावान, शांतिवान हूं ऐसा भास हुवा ।

अनंतर वही भासरूप प्रतिबिंबकी अहंतासे अति आनंदमान जीव स्वतःसिद्ध ज्ञानमात्र स्वरूपको परदा पडके, भूल वा भ्रममें पडा । अब वह भूल कौन समयपर पडी सो कुछ कहा नहीं जाता । परन्तु वोही भूल इसी मनुष्यदेहमें वही शुद्ध पंचतत्त्व रहनेसे अभी वैसाही भास हो वस्तुवोंको प्रिय मान, उसीके देह वा देह संबंधी जड वस्तुवोंको प्रिय मान उसीके सूक्ष्म

अध्यासरूप अहंतासे सुख, आनंद, हर्ष, प्रेम, वा ममत्त्व बढाय बारंबार जड देहका आश्रय कर, जीव दुःख भोग रहा है याते वही प्रत्यक्ष प्रमाणसे आपको आदि भूलका प्रमाण दर्शाय दिया है। ताते जीवभी अनादि और ऐसी भूलभी आदिसे चलतेही आई है । वही मनुष्य देहके शुद्ध सूक्ष्म तत्त्वरूप सर्व उत्कृष्ट आनंदको सकल ब्रह्मवेत्ताओंने शुद्ध ब्रह्म वा जीवका शुद्ध स्वरूप माना है । परंतु वह जड तत्त्वोंका भासमात्र आनंद, सुषुप्ति अथवा घोर निद्रावत् थोडेही बखत रहिके लय होतेही 'एकोहं' ऐसी इच्छारूप माया प्रगट हुई। और वही सूक्ष्म तत्त्वोंके भासरूप बिंबसे दूसरा प्रतिबिंब अधीरता, क्रोध. कठोरता, अविचार और असत्य अथवा काम, क्रोध, लोभ मोह और भय आदिक अशुद्ध गुणसंयुक्त आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ऐसे पंचतत्त्वोंका स्थूल मनुष्यदेह सूक्ष्म शुद्ध गुणसे उत्पन्न हुवा और उसीमें जीव समाया। उपरांत स्थूलदेहके प्रभावसे भोग इच्छा खड़ी हुई. और जैसा मनुष्य स्वप्नमें अनेक प्रकारकी सूक्ष्म स्मृतिजनित दूसरी सृष्टि उत्पन्न कर, आपनेही अनेक देह धारण करके अपना तमाशा आपही देख, नाना क्रिया करता है। तद्वत् आदि कर्ता मनुष्यने स्वसत्ता और प्रभुतासे चार खानी अर्थात् पिंडज पशु, अंडज पंछी आदिक, ऊष्णज वा उद्भिज्ज और स्थावर अंकुरादिक ये चार खानी और पांचवीं मनुष्य ज्ञानखानी, ऐसी

पांचों खानी उत्पन्न कर सबमें आप समाया । इसी प्रकार सब खेल कैसा हुवा कहोगे, तो सृष्टिकी उत्पत्ति समय ब्रह्मसे पुरुष पुरुषसे प्रकृति, प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे त्रिगुण और त्रिगुणसे सब संसार उत्पन्न हुवा ऐसा ब्रह्मवेत्ता कहते हैं । देखो भगवद्गीताका प्रमाणः—

श्लोक-"सर्वयोनिषुकौंतेय, मूर्तयःसंभवंतियाः ॥
तासां ब्रह्म महद्योनिरहंबीजप्रदः पिता ॥"

अध्याय १४ श्लोक ४ ।

श्रीकृष्ण अर्जुनको कहे हैं मैंही, सब जगतका पिता ब्रह्मबीजसे सबकी उत्पत्ति करता हूं । अथवा और कहा है:—

श्लोक-"आद्यमेकं परब्रह्म, नित्यमुक्तमविक्रियम्
तस्य माया समावेशो, जीवमव्याकृतात्मकम्" ॥

सारांश आदिमें ब्रह्म, नित्य युक्त, क्रियारहित होके, उसीमेंसे माया प्रगट हो अनेक जीव उत्पन्न भये हैं । अब इसीका प्रत्यक्षही अनुभव सुनो । जब कोई समयमें जीव कल्पनारहित धीरज, दया, शील, विचार और सत्य वे मनुष्य देहके शुद्धगुनमें स्थिति अर्थात शून्य आकाशवत् स्थिति अथवा आकाशरूप ब्रह्मांडकी सुषुम्ना नाडीमें जीवकी मानी हुई एकता है । क्योंकि, उस स्थितिमें देखे, सुने और नाना वस्तु भोग लिये हैं, उसीकी प्रियात

अथवा प्रीति, प्रेम, हर्ष; सुख वा आनन्द इतने नाम धराय, उसीका सूक्ष्म अध्यास बीजरूप रहता है फिर कोई वस्तुकी स्मृति होती है, सोई स्फूर्ति, चित्त वा मूलमाया अर्थात् सुषुम्ना नाडीसे वा कुंभकरूप ब्रह्मस्थितिसे अहं इच्छा 'एकोहं स्फूर्ति होती है। अनन्तर ब्रह्मांडमें सूक्ष्म पञ्चतत्त्वरूप धनंजय, देवदत्त, कूकर, कूर्म और नाग ऐसे पंच वायु उदय होते हैं। फिर श्वास नासाके दहिने छिद्र द्वारा नीचे उतरता है, तब रेचकरूप पिंगला नाडी उदय होती है, सोई ब्रह्मसे पुरुष हुवा। आगे श्वासा बांयी नासा-द्वारा खैंचने समय पूरकरूप इडा नाडी उदय होती है. सोई पुरुषसे प्रकृति हुई। ऐसे धनंजय, देवदत्त, कूकर, कूर्म और नाग ये पंचतत्त्व और इडा, पिंगला और सुषुम्ना, ये तीन गुण मिलके अष्ट वायुकी ब्रह्मांडमें सूक्ष्म अष्टांगीरू माया बनती है। फिर उसीसे व्यान, समान, उदान, प्राण और अपान ये पंचतत्त्व और वात, पित्त और कफ, ये त्रिगुण ऐसी अष्टवायुरूप पिंडमें सूक्ष्म, अष्टांगी माया उदय होती है। फिर श्वास नाभिस्थानपर आया बुद्धि उदय होती है, उसीको कोई ब्रह्मा अथवा महत्तत्त्व कहते हैं, सोई प्रकृतिसे महत्त्व हुवा। आगे श्वास हृदयमें आय, संकल्प विकल्पात्मक मन उदय होता है। फिर श्वास कंठमें आयके सूक्ष्म अहंकार उदय होता है, सोई महत्तत्त्वसे अहंकार हुवा। फिर अहंकारसे त्रिगुण हुये, सत्त्वगुणसे चौदह देवता, मनकी देवता

चंद्रमा, बुद्धि ब्रह्मा, चित्त नारायण, अहंकार रुद्र, श्रोत्र दिशा, त्वचा, वायु, नेत्र सूर्य, जिह्वा वरुण, नासिका अश्विनीकुमार, वाच अग्नि, हाथ इंद्र, पांव उपेंद्र, लिंग प्रजापति और गुदाकी देवता यम, ऐसी चौदह देवता हुईं। रजोगुणसे दश इंद्रिय और तमोगुणसे पंच विषय, ऐसे सूक्ष्म वायुरूप त्रिगुण व्यवहार वासना मात्र उदय हुये। फिर वही अहङ्कार, स्थूलदेहका अभिमान नाम धरा है, दश इंद्रियद्वारा पंचविषयोंका कोईभी प्रपंच व्यवहार करने लगा। उपरांत वोही व्यवहारमें सुख अथवा दुःख भोगकर, उलटके सब एकमें एक लय होके, खानी वा वानीका सूक्ष्म अभ्यास, आकाशवत् शून्य स्थितिरूप ब्रह्मानन्दमें मिलके सुषुम्ना नाडीमें लय हुवा। जैसा सुषुप्तिमें सर्व स्थूल और सूक्ष्म सुख दुःखादिक व्यवहार बीजरूप लय होता है तद्वत् स्थिति होती हैं। इस रीतिसे प्रत्येक इच्छाके समय ब्रह्मांडसे पिंड और पिंडसे ब्रह्मांड ऐसा वायुचक्र श्वासरूपसे फिरता है ताते श्वांस यही अर्धमात्रा वा मूलमाया है। इसी प्रकार जीव ब्रह्मानन्द शून्य वृत्तिसे जडका अवलम्बन कहिये आश्रय करके सुख दुःख भोग रहा है। अब इसीका अनुभव कोई देखेगा, तो अभी इसी बखत समुझ हो जावेगी। अब उपरका प्रसङ्ग सुनो, फिर आगे स्त्रीभाव पुरुषने माना और पुरुषभाव स्त्रीने माना, और मैथुन कर्मसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिकसात्विकी, राजसी और तामसी मनुष्य उत्पन्न हुए

और अभी मैथुन कर्मसे वैसेही उत्पन्न होते हैं। जैसे अग्निसे अनंत चिनगारे उदय होते हैं तैसे एक जीवसे अनंत जीव उत्पन्न हुए हैं। और नाना प्रकारका जड वस्तुवोंका फैलाव, केवल तमाशा-रूप जीवनेही भूलसे खडा किया है। फिर जब त्रिविधिताप, जन्म, मरणादिक दुःख जीवको होने लगा, तब ब्रह्मा, विष्णु, महेशने कल्पित अपनेसे श्रेष्ठ कोई एक जगतका उत्पन्न कर्ता और सुख दुःख दाता दूसरा ईश्वर है ऐसा अनुमान बांधा। और वेद, शास्त्र, श्रुति, स्मृति, मंत्रादिक बानीका जाल उसी ईश्वर प्राप्तिके वास्ते फैलाया। उपरांत सबने प्रथम जहांसे भूल खडी हुई थी, वोही सबका अधिष्ठान केवल बीजरूप, अखंड ब्रह्मानंद सुखब्रह्म-स्थिति चर अचर, जड, चैतन्यमें 'सूत्रमणि न्याय' व्यापक सिद्ध-करके बडे ज्ञानी, ब्रह्मादिक सनकादिक, गणी नारदादिक, शूर भीष्मादिक, कवि व्यासादिक, सिद्ध योगी कपिलमुनि, शंभु, गोरखनाथ आदिक, जगतमें ऋद्धि सिद्धिका बडा माहात्म्य फैलाय, मान बडाईमें फूलके, जन्ममरण रहटाके दुःखमें पडे हैं। और संसारी लोग स्त्री आदिक पंच विषयोंमें गाफिल हो के जन्म-मरण जठराग्निका दुःख भोग रहे हैं। इसी प्रकार नाना मतादिक बानीरूप अनंत शब्दका पसारा और अपना देह अथवा स्त्री पुत्रादिक खानीरूप प्रपंच व्यवहार खडा करके, सकल मनुष्यमात्र जीव, चैतन्य जीवरूपकी पूरी पारख न करनेसे ज्ञानदेही मनुष्य-

जन्म खोय, बार बार चौरासी योनिमें वासना बंध हो, दुःख भोगी हुए हैं और होवेंगे।

संन्यासी बोलेः-क्योंकि हो साधु महाराजजी! ब्रह्म अनुभव और आप कहे हुये, धीरज; दया, शील. विचार और सत्य ये सूक्ष्म शुद्ध गुणभी देह उत्पत्तिको मूलबीज अथवा अनादि भूल है। ताते इसप्रकार अनादि जन्म मरणका रोग जीवके पीछे लगे। तो आपका ज्ञानघर और हमारा ब्रह्मघर दोनोंमें प्रकाश कुछभी नहीं दीखता, काल अंधकार महा अज्ञानही जानो ? इसीते सद्‌गुरु मिलनाभी दुर्मिल. और ज्ञानप्राप्तिसे मुक्ति मिलनी उससे भी बडी दुर्मिल दीखती है तो आप हकनाहक ब्रह्मस्थितिको दोष लगाते हो दूसरेके आंखिमें अंगुरी तो डार देते हो, परंतु अपने आंखिमें धूर पडी, सो क्यों नहीं खोजते हो?

न्यायीसाधु बोलेः- संन्यासीजी, आप कहते हो सो एक प्रकारसे हमको भी कबूल है। परन्तु सुनो, आकाश सदोदित स्थिर रहता है याते आकाशका गुण धीरज है, प्राणवायुसे देह चलता है याते वायुका गुण दया है, अग्नि सब पदार्थोंको जलाय भस्म करके शांत करती है याते अग्निका गुण शील है क्योंकि उसीसे शांति आती है। जलका शीत गुण है, और उसका प्रवाह चलताही रहता है, तैसाही निरंतर विचार रखनेसे स्थितिरूप शीतलता आती है, याते पानीका गुण विचार है। पृथ्वीको जलाओ, खूंदों;

बखर चलावो, नर्क मूत्रादि दुर्गंधी पदार्थ उसीपर डारो, तो भी अपनी सत्यता त्यागती नहीं और ज्यादाही अनाज उत्पन्न कर देती है, याते पृथ्वीका गुण सत्य है। ऐसेही दया और विचार मिलके रजोगुणरूप गुरुभक्ति, सत्य और शील मिलके सत्त्वगुणरूप विवेक, और धीरजसे तमोगुणरूप दृढ वैराग. ऐसे त्रिगुण और पंचतत्त्व सब शुद्धरूप हैं। परन्तु देहके पंच प्राण और ब्रह्मांडके पंच उपप्राण, दश इंद्रिय, अंतःकरण चतुष्टय. और सकल नाडियोंमें जगह २ रक्त फैलानेकी क्रिया इत्यादि सब श्वास वा प्राणवायुसे होती हैं, श्वासको चलनशक्ति वा चैतन्यसत्ता जीव देता है, ताते श्वास यही वायुरूप घोडा और उसीपर बैठनेवाला जीव सवार है, ताते श्वास-रूप वायु और जीवकी सहायतासे ऊपरके कहे हुये शुद्ध गुण और उसीसे प्रगट होनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये अशुद्ध गुण, इन सबोंकी उत्पत्तिमें खानी वा बानीकी अध्यास रूप जीवकी अहंममता, आनंद अथवा प्रियता, सोई भूल आदि कारण है। जीवका नाग, कूर्म. कृकर, देवदत्त और धनंजय, ये ब्रह्मांडके सूक्ष्म पंचप्राणोंसे पिंडके पंचप्राणोंका संबंध; प्राणसे मन, चित्त, बुद्धि, अहंकारका संबंध मन, चित्त, बुद्धि अहंकारसे पंच विषय और दश इंद्रियोंका संबंध; दश इंद्रियोंसे सब शरीरका संबंध; शरीरसे माता. पिता, स्त्री, पुत्र, नातागोता, कुल, कुटुंबके स्वजन और मित्र, सज्जन कुजन, साधु, गुरु आदिक चैतन्य मनुष्योंका, और

पशु, पंछी, आदिक अनेक चैतन्य जीवोंका संबंध; तैसेही धन, घर, मठ, वस्त्र, अलंकार, अनाज, फल, खेती, बगीचा, अनेक देवता, विद्या कलारूप नानाग्रंथ, नानामार्ग, कर्म, उपासना, योग ब्रह्मज्ञान आदि अनेक कर्म, ऐसे जड कर्म और अनेक जड पदार्थोंका संबंध; इतना बडा भारी फैला हुवा बडा विकट छूटनेको कठिन, ऐसा संबंध बहुत दिनसे अथवा अनादि कालसे जीवके पीछे केवल भूलसे लपटते ही चला आया है । इसीको मुख्य कारण अंतःकरणरूप आकाश तत्वमें जीव सामिल हो, बारबार आनंद मान, वही अध्यास और प्राणकी सहायतासे बनी हुई आसक्ति रूप फुरनासे प्रगट होनेवाले, संकल्प विकल्प । दो मनके रूप, चिंतन अनुसंधान दो चित्तके रूप, निश्चय नियात्मक दो बुद्धिके रूप, अहंता और व्यवहारकर्तृत्व दो अहंकारके रूप, ऐसे अष्ट भाग सूक्ष्म वासनारूप अष्टांगी माया जीवको सदोदित घेरे रहती है । और व्यवहारोंमें जीव हकनाहक दुःख भोग, हाय हाय कर रहा है । ऐसा जबतक धीरजसे अधीरता, दयासे क्रोध विचारसे अविचार आदिक शुद्ध अशुद्ध वा गुण अवगुणोंकी उलटा पुलट हो, जीवकी आसक्ति जड देह भावना बनी रहेगी, तबतक जीव कोटि साधना करे, उसीको गर्भवास, जन्म मरण, त्रिविध ताप आदिक दुःसह दुःख भोगना ही पडेगा । परंतु जैसे सर्प और बाघ प्राणघातक जीव हैं, अग्नि जलानेवाला है, नर्क मूत्रादिक सडे हुए

पदार्थ महा दुर्गंध रूप रहते हैं, उसीसे बचायके सब मनुष्य सावधान रहके कभी भूलते ही नहीं। तैसे ही खानीमें मुख्य स्त्री है, सो बाघिनी, सर्पिनी समान प्राण घातक, अग्निवत् जलावनेवाली, और नर्क मूत्रादिकसे भरी हुई है। हरमहीनामें रजस्वला होनेबाद तीन दिनतक भगद्वारसे बहुत रक्त बहा करता है, वह दुर्गंध मोरीमें सडे हुए मूसा समान रहता है। ऐसे दुर्गंध रूप भगमें रतिविलास भोग करके पचना, मानो जीते ही नर्क भोगना है। ऐसे महामलीन दुर्गंध रूप स्त्री देहमें आशिक हो मुख्य देहके रसरूप वीर्यकी हानिसे शक्ति घटती है। विवेक, विचार, ज्ञानादिक उत्तम गुणका नाशकर आखिर नरकमें डालनेवाली स्त्रीरूप प्रत्यक्ष डाकिनी है ऐसी पूरी पारख करके बडे होशियारीसे सावधान रहना चाहिये। ऐसे ही एक साधुने कहा है:—

**दो०- वे विषया काटत चढे, ये चितवतचढिजाय**
**ज्ञान ध्यान पुनि प्रानहु, लेते मूलजुत खाय॥**

याते, दर्शन, स्पर्शन, एकांत सेवन, भाषण, विषयकथापरस्पर व्यवहार, विषयका ध्यान, और स्त्रीसंग ऐसे अष्ट मैथुन प्रकार हैं, सो कोईमें भी गाफिल न होना चाहिये। तैसेही वेदादिक वानीमें सब शब्दोंका साररूप अहं ब्रह्म सिद्धांत, केवल अध्यास मात्र सब जगतमें व्यापक, अर्थात् पंचतत्त्वोंका जडदेह उत्पन्न होनेको अधिष्ठान वा आदि कारण ठहराया है याते फिर फिर

जन्म धरानेको बीज है । ऐसा खानी कहिये मुख्य ली और बानी कहिये अहं ब्रह्म सिद्धांत दोनों अध्याससे जीव भ्रमवश होवेगा । इसीवास्ते इनकी पूरी पारख करके देह और देहसे उत्पन्न अनेक कल्पना, अनुमान, भास और सबोंका सूक्ष्म अध्यास, कोई भी जड़ वस्तुका सुख वा आनन्दसे उत्पन्न सूक्ष्म अहन्ता देहके साथ जावेगी । ऐसा सत्य असत्यका विचार कर, केवल चैतन्य भाव जीवरूप दृष्टिका बोध रखना, और दूसरे सब जीव मेरेही जातिके, परन्तु नाना कर्म कर अनेक दुःख भोग रहे हैं ऐसा निर्णय करके, काया वाचा और मनसे दया धारण कर, एक चैतन्य जीवरूप पर नजर रख, कोई जीवको दुःख देना नहीं ! जैसा रुपैया तोडते वखत बट्टा और फिर पैसेके रुपैया करनेको भी बट्टा लगता है, तद्वत् अन्तर बाहर बट्टा लगने नहीं देना । और रुपैया जैसा खन् खन् खन् सब समय सरीखा अच्छा बजता रहता है, तैसेही पूरी स्थिति अंतर बाहर कहिये सूक्ष्म और स्थूल व्यवहारमें सदा कायम रखना चाहिये । ऐसी स्थिति बनी तो जीवहीं सत्य ठहरा, विचारभी एक जीवहीका, धीरज, दृढ वैराग्य वा अचल स्थिरता, चैतन्य जीव परही रखना । समदृष्टिसे क्षमाशील, नम्रताभी जीवहीके साथ, ऐसा एक चैतन्यभाव अथवा शुद्ध पारख निर्णयदृष्टि सदोदित एकरस धारण करके जीवन्मुक्त हो जाना । विवेक, विचारके सूक्ष्म मंत्ररूप दृष्टिसे देखे, सोई पूरी पारख विवेकरूप न्यायदृष्टि है ।

ऐसी सहजस्वभाव दृष्टि बन गई तो फिर भूलसे देहके शुद्ध अशुद्ध गुण उत्पन्न होनेकी दहशत रही नहीं। देह रहनीको शुद्ध गुण लेना है, नहीं तो वह भी देहके साथ चलेजावेंगे। ऐसी निर्मल दृष्टि होनेसे जीव अशंक, निर्भय हो जावेगा। जैसा भूना बीज फिर जमता नहीं, अथवा सर्पका जहरी दांत तोड डाला तो फिर विष-बाधा ही नहीं, तैसेही देह रहे तक ऊपरके शुद्ध गुण रहस्यसंयुक्त रहके केवल देहका प्रारब्धभोग अन्न, वस्त्र और जल आदिक जैसा वखत पर मिलेगा, उसीमें संतोष वृत्तिसे जगतमें विचरना। देह नाशमान और मैं अविनाशी ऐसा निर्णय कर, देहके सुख दुःखमें आसक्त होना नहीं! ऐसा स्वयं मुक्त हो, दूसरे जीवोंको जड देह बन्धन छूटनेके लिये सहज ही उपदेश करना, चाहे कोई ग्रहण करे वा न करे। देखो, तुलसीदासजी कहे हैं:—

**चौपाई—"अति दयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा॥**
**पुनि पुनि सीख सिखाव सुबोधा" ॥**

रामायण उत्तरकांड।

ऐसी जीवन्मुक्त शुद्ध हंसस्थिति धार, स्थूल देहके साथ देहका प्रारब्ध भोग छूट जानेसे जीवके निज स्वरूपमें तदाकार हो, विदेह स्थिति सहज ही होवे भी देखो:—

**"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या" ॥**

इति श्रुतिः।

ऐसे ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म एक सत्य और जगत सब मिथ्या 'मृगजलवत्' ठहराय, आखिर ब्रह्म सिद्धांतमें जगत और ब्रह्म एक ही व्यापक मान, शुद्ध, अशुद्ध, क्रिया अथवा विधि निषेध सब छोड, बास, मूक, जड दशा धार, अन्तमें उन्मत्त, पिशाचवत् पागल मनुष्यकी नाईं भ्रमित होके, परमहंसदशामें जो चाहिये सो पशुवत् व्यवहार करते हैं। देखो, सुन्दरदासजी कहे हैं:—

छंद—"तोहिमें जगत यह तूंहि है जगतमांहि।
तोमें अरु जगतमें भिन्नता कहां रही"

सुन्दर विलास।

और तुलसीदासजी कहे हैं:—

चौपाई--"व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी॥
जड चेतन घन आनंदराशी"॥

रामायण बालकांड।

और निश्चलदासजी कहे हैं:-

चौपाई--'ज्ञेय ध्येय मोतें कछु औरा॥
लखे सु पशु यह वेद ढंढोरा"॥

विचारसागर पंचमतरंग।

और" द्वितीयाद्वै भयं भवति"

इति श्रुतिः।

इस प्रकार सबने ठहराया है। परंतु उन्मत्त, पिशाचवत् स्थितिकी धारणा न किये हुए ज्ञानी भी जड चैतन्य एक रूप मानंदी करके, नाना कर्ममें फंसे हैं। जैसा दूध और पानी मिला है तबतक व्यापक है, दूध न्यारा और पानी न्यारा हुवा तब दोनों न्यारे हैं। तैसी कोई भी वस्तु न्यारी है, तबतक व्यापक नहीं और व्यापक है तबतक न्यारो नहीं। तो देखो सबने न्यारा सर्व साक्षी गुरुपद परब्रह्म कहा है, फिर सिद्धांतमें व्यापक कह दिया, तब साक्षी दशा कहां रही, याहीतें सब आवा-गमनमें पडे। अब ब्रह्मज्ञान कारा अंधियारा अथवा मेरे गरीबका कहना पूरा अंधियारा इसीकी पारख, निर्णयरूप कसौटीपर लगा-यके करो और फिर क्या ठहरना है सो देखो।

संन्यासी बोले:--साधु महाराजजी, सत्य न्याय दृष्टिसे देखने लगे तो, आपका कहना प्रत्यक्ष प्रकाशरूप ज्ञान दीखता है। परन्तु सुनो, तुलसीदासजी कहे हैं:—

**चौपाई—"ज्ञानकि पंथ कृपानके धारा" ॥**

रामायण उत्तरकांड।

ताते तरवारके धारपर कोई खडा रहे, कोई शूर रणमें टूक टूक होय मर जावे, अथवा कोई पतिव्रता पतिके साथ सती हो, अपना देह जीतेही जलाय ले ये भी एक रीतिंसे सुलभ है। परन्तु देह और देह व्यवहारको सब आशा छोड, आप कहि आये

स्थितिपर निरंतर कायम होना, बहुतही कठिन दीखता है; कोई बिरलाही निकल आवेगा। ताते ऐसी स्थिति प्राप्त होनेको ज्ञानसीढीके एक एक पायडीपर कैसे चढना सो युक्ति कृपा करके बतावोगे तो हमाराभी कार्य सिद्ध हो जावेगा।

न्यायी साधु बोलेः– देखो संन्यासीजी, प्रथम भोजन, आच्छादन, मैथुन, निद्रा, भय, और मोह ये षट् पशुधर्म सुधारना चाहिये। प्रथम भोजनमें अनाज, फल, कन्द मूल आदिक निर्जीव पदार्थ हैं। सो पृथ्वी और पानी ये दो तत्त्वोंको विशेष सहायतासे शरीर ऊपरके बालवत् सब पृथ्वी अंकुर उत्पन्न हुये हैं याते अंकुरमात्र आहार वा भोजन करना। और हृदयमें दया धारण कर, क्रूर निर्दय पशुवत् किसी जीवको वध करके मांस भक्षण पशुसमान कभी करना नहीं। ऐसा भोजन कर्म सुधारना। दूसरे आच्छादनमें केवल शरीर आच्छादन माफिक वस्त्र आपने पास रखना, कोई अच्छा वस्त्र वा कपडा घरमें लायके धरा परन्तु उसीका उपभोग लिया नहीं; और उसीमें आशा रही तो. कपासीमें अथवा उसी वस्त्रमें कीडा होना पडेगा। तैसेही जीवपर आच्छादन वा भूल न होनेके लिये दुर्जनको संगति छोड, सज्जन, साधु और सद्गुरुरूप देवको संगति करना। तीसरे मैथुनकर्ममें वेद आज्ञा प्रमाण बारह वा चौबीस वरसलों पूरा ब्रह्मचर्य व्रत धार, गुरुकेपास विद्या पढके, सत्संग कर, आत्मज्ञानकी पूरी समझ कर

लेना। फिर आगे जो विषय न जीतागया तो केवल एक पुत्र उत्पतिके लिये विवाह कर गृहस्थाश्रम करना। उपरांत पुत्र उत्पत्ति करके फिर आत्मज्ञानसे चैतन्य जीवरूपकी पारख कर मुक्त होजाना। अथवा वर्तमान स्थितिवत् विवाह कर, एक अपनी स्त्री छोड, जगतकी सब स्त्रियां मातारूप लेख, पाप-दृष्टि विषमकर्मकी सब दिलसे दूर बहाय, सदा सत्संग में ज्यादा प्रेम लगाते रहना। फिर आगे विवेक और सत्संगद्वारा ज्ञान ज्यादा बढनेसे, वही आपनी स्त्री प्रत्यक्ष अग्निसे मान, महा विष-यरूप, नर्कका कुंड, अथवा जले सिंदीके झाड वत् केवल डाकिनी भासने लगेगी। अनंतर संसारसे पूर्ण उप राम और ज्ञानमें विशेष अनुराग होनेसे मैथुनकर्मकी आसक्ति सहजही छूट जायगी, और जीव शुद्ध होवेगा चौथे भयमें ऐसा विचार करना कि, ये मृत्युलो-ककी बस्ती है, कौन दिन अपना शरीर छूटेगा इसीका भरोसा नहीं याते अपने आयुष्यका बखत नाहक गाना बजाना, अनेक प्रकारके खेल, गप्पोडी बातें इत्यादिक कर्ममें कभी खर्च करना नहीं। और केवल पेटगुजारा होने माफिक मेहनत करके, ज्ञान-देही मनुष्य चोला बहुतही दुर्मिल और अमोल रत्न पाया है, उसीका कार्य मूल सच्चे ज्ञानप्राप्तिकी कमाई कर लेना। निरन्तर ऐसा विचार करना कि, जीव अजर, अमर, अविनाशी और देह जढ नाशमान है, याते देहका भय आसक्ति छोड, धीरज और

दृढ वैराग्य हृदयमें धार, फिर फिर जन्म लेनेका डर पूरा त्यागके, सत्संग और विचारद्वारा निर्भय होजाना। पांचवीं निद्रा अर्थात् गाफिल, भ्रम, भूल वा पंचविषयोंकी आसक्ति है। याते दश इन्द्रिय और कौनसीही जड वस्तु अपनेसे श्रेष्ठ ठहराय, आसक्ति वा सत्यमानन्दी करना सो मन है। तो देखो, सब इन्द्रिय जीव राजाके गुलाम, परन्तु जीवनेही अपनी सत्तासे इन्द्रियोंको प्रधान वा राजा बनवाय, आप सच्चा राजा परन्तु उन्होंका दीन गुलाम बन, उनकीही सेवा बडे प्रेमसे करता है याहीते इंद्रियोंके जड पंच विषयोंकी आसक्ति धीरे धीरे छोड, केवल देह निर्वाहमात्र अन्न वस्त्र आदिक जो वर्तमानमें मिले उसीमें संतोष मान, देहकी बेगार कैसी तो भी देह साबुल है तबतक मैंजलको पहुंचाय देना, तब निद्रा वा गाफिली दूर हो जायगी। छठा मोह अर्थात् देह और स्त्री, पुत्र, घर, द्रव्य, कुटुम्ब, जीत: कुल आदिक खानीका माया मोह, और भ्रमवश गुरुवालोगोंने बताये हुए कर्म, उपासना, योग, ब्रह्मज्ञानादिक बानीका मायामोह ऐसा सबका मोह विवेकद्वारा तोड डालना, और सब जागृत प्रपंच केवल नाशमान स्वप्नवत् व्यवहार, देहके साथ जानेवाला है, ऐसा पूरा पारख दृष्टिबल करके सबका मोह ममता प्रीति इत्यादि तोड तोडके विचार द्वारा सत्संगसे शुद्ध होना।। देखो, सुन्दरदासजी कहे हैं:—

दोहा--"मारे सब संग्रामकरि, पिशुनहतेघटमाहिं
सुंदर कोई शूरमा, साधु बराबर नाहिं ॥ "

ज्ञानविलास

ऐसे प्रथम षट् पशुधर्म पूरे सुधारके सब दुर्गुण त्यागना चाहिये । अनंतर ऐसाही विवेक विचार सदोदित कायम रखके, एक जीव सत्य और बाकी सब खर्च वा नाशमान ऐसा पूर्ण समझके अधीरता छोड देवै ऐसा विचार करना कि, बहुतही उदर-पोषण निमित्त कष्ट पडे तो, आखिर भीख मांगना पडेगी, और शरीरपर बहुतही विपत्ति आय पडी तो आखिर शरीर टूट जायगा परन्तु मेरा जीव तो अमर, अविनाशी है ! इसका नाश कोई क्या कर सकेगा ? ऐसा जानके हाथ, लात, दांत; लाठी शस्त्र आदिक किसी प्रकारसे अपने और दूसरे जीवोंको दुःख न देना ये शारीरिक वा कायिक कर्म हैं कोमल, मृदु, मीठे, नम्रता संयुक्त शील स्वभाव धारण करके, न्याय नीतिके शब्द किसी जीवके पास उच्चारै और बालपनसे नाना शब्दोंकी मानंदी, नाम जाति, कुल, वर्ण आश्रम, कर्म, स्त्री, पुत्र, देहादिक मान रखी है; उन सबका अभ्यास छोड, एक जीव शब्दमें सच्चा सार है, अर्थात् जीवसे सब शब्दोंकी उत्पत्ति भई है याते जीवरूपके सांच चैतन्य जानना; ये वाचिक कर्म हैं । तीसरे कोई जीवका घात, ( हत्या ) करनेकी इच्छा छोड, सबके कल्याण अर्थात् व्यवहारके कर्म अथवा मुख्य

कोई जीव जन्म मरणसे छूट जाय, ऐसा विचार बतावे और आप भी करे। तैसेही अंतरमें माने हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अहंकारादिक नाना विकारसे जीव दुःख भोग रहा है, उसीको जडकी आसक्तिसे छुडावे, सो मानसिक कर्म है। ऐसे काया, वाचा और मनसे अपने और सर्व जीवोंपर सम दृष्टि, निर्वैरत्व जीवदया रखना चाहिये। और शांति क्षमा ये गुण अंगमें धारे, परंतु एका की निज दया और पर दया समभाव जीव दयादृष्टि होनेकी नहीं। याहीते ज्ञान प्राप्तिके लिये, यौवनमद, स्त्रीमद, धनमद, राज्यमद, विद्यामद, ज्ञानमद, तपमद और सिद्धिमद ऐसे अष्टमद दूर बहाय अभिमान छोडना। और सद्गुरुके पास प्रियकर, कोमल, दीन बचन उच्चारे। जीव सत्य और अंतर बाहर देह व्यवहार सब नाश मान जड, ऐसा पूर्ण अनुभव पारखदृष्टिदाता और ऊपरकी सब शुद्ध क्रिया और शुद्ध लक्षण जिनके अंगमें सदा जागृत हैं, वेही सदगुरु, वेही ईश्वर वेही देवता हैं; ऐसी पहिचान करके, उनको सबसे श्रेष्ठ मानना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिक गुरुवा उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले हैं, परन्तु सद्गुरु तो ये तीनों उपाधि तोडके जीवोंको मुक्तिदाता है। याहीते अन्न, वस्त्र, जल, अथवा यथाशक्ति द्रव्य भी खर्च कर, उनकी बडे प्रेमसे बाहरकी देह सेवा वा टहल अच्छी करना चाहिये। और उन्हींकी सत्संगतिसे जब भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना आदिक सब देह बिकारकी

आसक्ति छूट जायगी, तवहीं चैतन्य जीव दृष्टि निज दया प्रगट होगी। अनंतर देह रहे तक शिष्य भाव वा लघु भाव धारण कर सद्‌गुरुसे प्राप्त भई निरहंकार निर्वैर ऐसी चैतन्य सम भाव सब जीवोंपर समान न्यायदृष्टि अथवा जड चैतन्यकी पारख दृष्टि सदा एक रस धारण कर हंसवत् क्षीर नीरकी निबेरा करै अर्थात् पंच तत्त्व और तीन गुणोंमें जीव शामिलवत् जड चैतन्य मिश्रित बना है, वह सब जडकी भावना त्याग, एक चैतन्य जीवपद ग्रहण हुवा तो, सद्‌गुरुकी सत्य पारख दृष्टि अपने अंगमें प्रकाशित हुई ऐसा जानना। परंतु देह व्यवहार उपाधि, मान, अपमान, जाति, कुल, वर्ण, आश्रम आदिक किसीका अहंकार रखे नहीं; और सुख दुःख कहिये ब्रह्म जगत भावना छोड देवे। फिर जैसे चावल सीझते वखत तर ऊपर खदबद आवाज कर, बहुत चंचलतासे हिलते रहते हैं और पूरे सीझ जाने उपरांत चंचलता छूट, मधुर मिष्ट हो जाते हैं तद्वत् शिष्यने गुरुके ज्ञान प्रकाशमें मिलके, अनुमान, कल्पना, भास अभ्यासकी सब खदबदरूप चंचलता छोड, गुरुदृष्टि भूमिका-पर स्थित होके, सहज स्वभाव, लीनता, नम्रता, कोमलता आदिक मधुर मीठेपना धारण कर, धीरज, दया, शील, बिचार, सत्य, विवेक वैराग्य और गुरुभक्ति पे सब रहस्य संयुक्त जगतमें वर्तना। देह अभिमान पूरा गलित होनेके लिये सत्य साधु वा सत्यन्यायी ॥ पारखी सद्‌गुरुकी काय, वाचा और मनसे सेवा करके उनका ही

सत्संग करना। क्योंकि, ऐसी संगतिमें रहनेसे देह अहंकार गलित हो, सहज ही निर्मल शुद्ध दशा हो जाती है। इसी प्रकार ज्ञान सीढीके एक एक पायडीपर धीरे धीरे चढके चैतन्य जीव दृष्टि अथवा गुरु पारख दृष्टि सदोदित साथ रखके, जीव जीवन्मुक्त हो जाता है। अब इसी विचार पर आप क्या कहते हो सो कहो भला ?

संन्यासी बोले:–देखो साधु महाराज, दूध और पानीका निवेर हंस करता है, तद्वत् जड चैतन्यके गुण और दोष जाननेवाला मनुष्य ज्ञानखानी पांचवीं है, ऐसा आप प्रथम ही कह आये हो। अब दूसरी चार खानी खडी होनेको क्या कारण हुवा ? और ब्रह्मांडमें चंद्र, सूर्य, तारागण ये कौनसी खानी है ? पवन चलाने, पानी गिराने आदि सकल ब्रह्मांडकी क्रिया ईश्वर बिना दूसरा कौन करनेवाला है ? इसीका यथार्थ न्याय दया दृष्टि करके मुझे खोलके बतावो;

न्यायी साधु बोले:–संन्यासीजी देखो जगत्में शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध, वासना और इच्छा ऐसी सात प्रकारकी उत्पत्ति है। मरा हुआ मेंडक वा जोंककी जारके राखड बनवाय, आगे बरसात लगने समय जब बादल गरजता है उसी वखत, वही राखड जलमें डाले तो, वहां बहुत मेंडक वा जोंक उत्पन्न होते हैं, याते ऐसे जीवोंकी शब्दसे उत्पत्ति है। मैथुन कर्मसे उत्पन्न होने

वाले मनुष्य, पशु, पक्षी आदिकोंकी स्पर्शसे उत्पत्ति है। मोर, अलल पंछी आदिक दृष्टिभावसे रति करने वाले और शरीरमें उष्णतासे जुवां, खटमल, चीलर ये जीव होते हैं, और गेहूं, चावल, दाल आदि अनाजमें उष्णतासे कीडे होते हैं, सो सबकी रूपसे उत्पत्ति है। जलमें रहनेवाले जीव जंतु, मच्छी मगर आदि, और फलोंके कृमि आदि, ये सबकी रससे उत्पत्ति है। मट्टी गोबरमें उत्पन्न होनेवाले कृमि आदि सबकी पृथ्वीके गंधसे उत्पत्ति है। कोई कृपण मनुष्य धनपर वासना रखनेसे वा कोई मनुष्य स्त्री आदिक देह अथवा कोई अन्य जड वस्तुकी वासना रख, उसीके प्राप्तिविना दृढ वासनासे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ऐसे सूक्ष्म नौ तत्त्वात्मक शरीरकी धारणा, सो भूत योनिकी उत्पत्ति और देहके श्वासमें सात स्वर्गकी कल्पना कर, उसीमें तैंतीस कोटि देवता ठहराय, उनकी भक्ति करनेसे सूक्ष्म नौ तत्त्वात्मक प्रकाशरूप देवयोनिकी उत्पत्ति, ऐसी भूतयोनिकी और देवयोनिकी वासनासे उत्पत्ति है। योग साधनासे पिंड और ब्रह्माण्ड वायुकी पूर्ण सब कला साध, सिद्ध हुए योगी, सो परकाया प्रवेश करना, एकके अनेकरूप धारण करना, भीष्म पितामह सरीखे देह तजनेवाले, ऐसे सब सिद्धोंकी इच्छासे उत्पत्ति है। ऐसी सातही प्रकारकी उत्पत्ति मनुष्यकी चार अवस्थाओंके सूक्ष्म वासनारूप अध्याससे आदिमें प्रकट भई है। देखो,

जागृतिमें अनेक संसार कर्ममें जीव रात दिन हाय हाय कर, बहुत कष्ट करनेमें सदा चंचल चित्त रहते हैं, ताते ऐसे कर्मोंकी आशा रखके शरीर छूटनेपर वैसीही चंचल अवस्थाकी अंडज खानि जागृतिके अध्याससे उत्पन्न हुई है। प्रत्येक खानिमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ऐसे तीन प्रकार हैं, सोई उत्तम, मध्यम और नीच कर्मोंकी आसक्ति समझ लेवे, राजहंस, गरुड, तोता, मैना आदि उत्तम; चिडियां, परेवा, कबूतर, तित्तर आदि मध्यम; काग चील, गीध घुघू, चमगादर, मच्छी, सर्प आदि कनिष्ठ हैं। स्वप्न अवस्था केवल स्मृतिजन्य संस्कार वा वासना मात्र वायुरूप है। उसीमें वायुरूप साधना साधनेकी श्वासमें सोहं शब्द सिद्ध करके उसीका जाप कोई करते हैं। जैसा एक साधुने कहा है:—

दोहा-'श्वासश्वासपर नाम ले, बृथा श्वास मतखोय।
ना जानो यह श्वासको, आवन होय न होय॥
"कर डोलूं न माला फिरूं, मुखसे कहूं न राम॥
अंदर घटमें लगि रही, क्या बकबकसे काम॥"

इसी प्रमाण श्वासपर ध्यान धरे, अथवा बाहर राम, कृष्ण आदिक कोई देवताओंका नामस्मरण करे और सब नाडियोंकी गति जाननेकी वैद्यक विद्या साधे, दूसरे इडा, पिंगला और सुषुम्ना इन नाडियोंकी गतिमें उत्तम, मध्यम कनिष्ठ ऐसा घातक समय वा शुभ लग्न जाने सो स्वरोदय ज्ञान वा ज्ञान सरोदा; तीसरे ब्रह्मांडके तारागण, नौग्रह, इनकी गति और चंद्र सूर्यके ग्रहण

आदिक ब्रह्मांड वायुकी सूक्ष्म गति, लग्न मुहूर्तादिक जाने सो ज्योतिष विद्या, चौथे शरीरमें छवो चक्र भेदनक्रिया करके योग-मार्गसे श्वास ब्रह्मांडमें चढाय, बडे बडे षड्गुण ऐश्वर्य, ऋद्धि सिद्धि आदि करामात चमत्कार बतानेवाले महासिद्ध, ये सबकी स्वप्न अध्याससे उत्पत्ति है। श्वासमें विशेष चंचलता और अंतमें प्रकाश प्रगट हो कुछ स्थिरता आती है, याते जगतमें विशेष चंचल ऊष्मज या उद्भिज्ज खानी उत्पन्न हुई। उसीमें भौंरा, जुगुनू, पतंग, टीडी आदि उत्तम; झाड, घास, फल, अनाज आदिकोंके कृमि मध्यम; नर्क, गोवर, कीचड आदिकोंके कृमि कनिष्ठ हैं। तैसेही ब्रह्मांडमें सूक्ष्म नौ तत्त्वरूप वासनात्मक बहुत दुःख भोगनेवाली भूतयोनि. चंद्र, सूर्य, तारा मंडल आदिक प्रकाशरूप देवयोनि, और पवन चलाने, बदल छाय देने, बिजुली कडकान और गिराने, वोरा जल गिराने, वर्षा, शिशिर. धूप ये तीन काल पलटाने, नक्षत्र गिराने, चंद्र, सूर्य, तारागणकी गति फिराने इत्यादि ब्रह्मांडके अनेक व्यव-हार करनेवाले वायु, वरुण, इंद्र, ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि सूक्ष्म वासनात्मक देहधारी सिद्धयोनि हैं। ऐसी भूत, देव और सिद्धयोनि, ब्रह्मांडकी और जगतकी एक ऊष्मज योनि, ये चारों योनि स्वप्न अवस्थाके अध्याससे उत्पन्न हुई हैं। सुषुप्तिवत् पंचतत्त्व महाशून्य जड हैं, उसी आधारसे शरीरके बालवत् वृक्ष, वेली, घास, वनस्पति आदि पृथ्वी ऊपरके सब अंकुर वा पाषाणादि जड

स्थावर खानी उत्पन्न हुई हैं उसीमें ज्ञानीय कला जीव नहीं है। सुषुप्ति अवस्थामें शिला वा लोहवत् जीवकी स्थिति होती नहीं, क्योंकि, वहांसे फिर स्वप्न और जागृति व्यवहार उदय होते हैं, याते केवल महासुषुप्तिवत् झाड पाषाणादिक जड अज्ञान जीव हो सकता नहीं। तुर्या अवस्थासे ज्ञानी लोग, हम तीनों लोकके सकल पदार्थ जाननेवाले और दया, क्षमा, विचार आदिक शुद्ध गुण युक्त सर्व साक्षी ब्रह्म ठहराये, परन्तु अपने जीव रूपका खोज न लगनेसे, अन्तमें सर्वत्र व्यापक ब्रह्म बननेकी चाह रख, यही तुर्या अवस्थाके अध्याससे सबसे उत्तम पिंडज 'पशु खानी उत्पन्न हुई। उसीमें सबसे उत्तम मनुष्य योनि और गऊ, भैंस, बैल घोडा, हाथी, ऊंट आदि मध्यम, मेंढा, बकरा, हरिण, सांभर, कुत्ता, बंदर आदिक कनिष्ठ; बिल्ली, स्यार, भेडिया, बाघ सिंह, आदिक निकृष्ट ऐसे पशु उत्पन्न हुये हैं। सब खानिमें पृथ्वीके सकल अंकुर वा पाषाणादि स्थावर खानि तो केवल पंचतत्त्वोंके आधारसे प्रकाश रूप निर्जीव जड है। ऊष्मज, अंडज और पशु पिंडज इनमें एकसे एक जाननेकी कला थोडी थोडी विशेष हैं, परन्तु अज्ञान, जड, आसक्त पशु धर्म तीनों खानिमें सरीखे हैं। ज्ञान खानि मनुष्य तो सर्वका राजा है परंतु चारों अवस्थाओंकी वासनाओंसे सब खानि ज्यादा बढाय रहा है। भूतयोनि, देवयोनि, और सिद्ध योनि ये अपने अपने पाप पुण्यका फलभोग भोगेंगे

अनंतर सब सिद्ध और देवयोनिके जीव फिर मनुष्य जन्म धरके अनेक योनि भ्रमते ही रहेंगे। और भूत प्रेतादि जीव नाना प्रकारकी चौरासी पाप योनि भोगेंगे। मनुष्य जन्ममें जो शुभ अशुभ कर्म मृत्यु लोकमें किये हैं वैसे ही फल भोग स्वर्गादि अन्य लोकमें भोगते हैं। कारण मृत्यु लोक कर्म भूमिका है, परंतु गर्भवास दुःख किसी योनिमें छूटता नहीं। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये मुख्य विशेष तत्त्वोंके जगतमें जब जीवोंके देह हैं, सोई वह योनिका गर्भ है ऐसा जानना। परमहंस जड अजगर वृत्ति धारे हुए अजगरादिक जड योनिमें जावेंगे। तात्पर्य, मनुष्य सकल खानिका राजा है और नर देहरूप ज्ञान प्राप्ति होनेका स्थान है, सो विषय कर्मोंमें चला जायगा फिर जलदी मनुष्य जन्म मिलनेकी आशा ही नहीं दीखती। कौडी, पैसा, अनाज, वस्त्र, सोना, चांदी आदिक धातु, रत्न और पंचतत्त्व, ये सब जड पदार्थ हैं; तैसे ही जीव और देहकी सहायतासे कल्पना अनुमान रूप कर्म उपासना, योग ब्रह्म ज्ञानादिक, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा परमात्मादिक सब जड भास हैं। ऐसे जडकी पारख सब मनुष्य करते हैं परंतु अपने निज स्वरूप चैतन्य जीवकी पारख कोई करता नहीं। याते सब ज्ञानीके अंधे और चैतन्य जीव रूपकी पारख करेगा सोई आंखवाला पारखी नहीं भला? देखो सुंदरदासजी कहे हैं:—

**दोहा—"सुंदर मानुष देह यह, यामें दुई प्रकार।**
**याने बडे जगतमहिं, याते उतरे पार" ॥**

ज्ञान समुद्र ।

इस वास्ते एक बेर मनुष्य देह चला गया फिर मिलना दुर्लभ है तो । अबकी वखत तुम भी अपना कार्य जल्दी सुधार लेव ।

संन्यासी बोलेः—क्यों साधु महाराज, आप कहते हो यही पक्का ज्ञान निष्पक्ष निर्णय रूप है ऐसा हमको अब पूरा जान पडा । परन्तु मनुष्य चोला छूटे उपरांत फिर जीव कैसा उत्पन्न होता है ? और रोचक, रसिक भयानक और यथार्थ कहिये सत्य न्याय दर्शन सार शब्दकी पहिचान कैसी करना ? इतना आप कृपा करके समझावो ?

न्यायी साधु बोलेः—सुनो संन्यासीजी, वेदका कहना ऐसा है कि, पंचभूत, इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, वासना, शुभ अशुभ कर्म और अविद्या, ऐसे अष्ट भाग मिलके देह छूटने समय एक पुर्यष्टक कहिये सूक्ष्म शरीर बनता है । फिर उत्क्रांति कहिये देहसे बाहर निकलने गति कहिये पर लोकमें गमन करने, प्रतिष्ठा कहिये वहां ही स्थिर होने, तृप्ति कहिये तृप्त होने, पुनरावृत्ति कहिये फिर लौटने और प्रत्युत्थिति कहिये फिर उत्पन्न होने, ऐसी छःअवस्था चोला छूटेबाद जीवको होती हैं । जल रूप सूक्ष्म जीव कोई वनस्पतिके अर्कवत् सूर्य किरणसे उसीका आकर्षण होने, वह बर्फरूप शुद्ध जल

ऊपर बादलमें जाके गिरने, जलसे अनाज उत्पन्न होने, वह अनाज खानसे वीर्य बनने, और वह वीर्य पुरुष द्वारा स्त्रीके गर्भमें स्तंभन होने, ऐसी पंच अग्निकी क्रिया ऊपरकी छः अवस्था पूर्ण होनेको लगती हैं। इसी प्रमाण फिर जीव उत्पन्न होता है ऐसा वेदका कहना है। परंतु सचमुच न्याय दृष्टिसे देखोगे तो, जीवके पास निरंतर सूक्ष्म वासना रूप शरीर हैही, याते वही सूक्ष्म गर्भमें जीव सदोदित बना ही है। क्योंकि, कोई जड वस्तु मेरा ही रूप ऐसी मानंदी करके उसीसे प्राप्त होता हुवा सुख अथवा आनंदका सूक्ष्म अध्यास वा मूल जीवके पास प्रवाह रूपसे सनातन चली ही आई है। इसीते चोला छूटे उपरांत जैसा चार अवस्थाका अध्यास होगा, तैसा जीव वही भूलमें समाता है। प्रथम आरंभमें सिद्ध कलाधारी स्वसामर्थी इच्छाचारी एक ही जीवने एक दियासे अनेक दिये लगाये समान आप ही सब चौरासी देहधारी जीवमें समाया है ऐसे एकसे अनेक जीव प्रगटे हैं। अब स्थूल देहके नाना अभिमानमें पडनेसे वह आदिका सामर्थ्य जीवोंका घट गया है। देह मात्र उत्पन्न करनेका सामर्थ्य रहा है सो सात प्रकारसे उत्पत्ति होती है। इससे अब नाना चौरासी योनियोंमें जीवोंको आना जाना पडता है। वह ब्रह्मानंदका मूलरूप अध्यास नाश हुए विना जीव जन्म मरण प्रवाहसे छूटनेवाला नहीं, बारबार योनि संकट भोगेगा। अब सुनो। स्वर्ग प्राप्ति, सिद्धि प्राप्ति, ब्रह्म प्राप्ति, उत्तम

जन्म प्राप्ति, धन धान्य लक्ष्मी प्राप्ति आदि फलकी लालच दिखाते हुए कर्म उपासना योगादि अनेक प्रकारके सब शब्द रोचक वा अन्य प्रकारसे मायामुख शब्द हैं । यम यातनाका डर, नर्कका डर, शापका डर, देवताओंका डर, भूतप्रेतादि डर इत्यादि डर बतानेवाले सब भयानक शब्द भी हैं । ये शब्द भी माया मुखमें गिने जाते हैं । ऐसे सब डरसे और जन्म मरणसे छूट जानेके लिये कोई देवतोंकी स्तुति करने, अथवा कोई साधु संत वा गुरुवा लोगोंके पास दीनतासे जन्म मरण दुःख छूटनेका साधन युक्ति वा कोई उपाव पूछनेसे सब जीव मुख शब्द हैं । स्वर्ग नरक, मुक्त बंध, पाप पुण्य, विधि निषेध, नाम रूप, बोलना सुनना, जड चैतन्य, एक दो, ईश्वर जीव आदि सकल मिथ्या, भ्रांति, और मैं आत्मा निर्गुण, निराकार, अनंत, अनिर्वाच्य, मन बुद्धि लक्षके परे, 'सुवर्ण भूषण न्याय' 'जल तरंग न्याय' अंतर बाहर, ओतप्रोत सर्वत्र व्यापक, अखंड आनंद रूप ऐसे अनुभव वेदमें यथार्थ वा सत्यरूप दर्शक शब्द कहे है । परंतु इनसे भी जड चैतन्यका निरुवारा नहीं होता, याते ये सब महाभूलरूप ब्रह्ममुख शब्द हैं । अब स्थूल वा मोटी माया स्त्री और द्रव्य है । ज्ञान, क्रिया, बल, वीर्य, लाज, यश, लक्ष्मी, कीर्ति, तप और मुक्ति ये सब शुद्ध गुणहारक दश दोष मैथुन कर्ममें हैं । एक साधुने कहा है:—

दोहा-"पुत्र कारण भई जननी, भोगकारणभारज।
पूजा कारन भई देवी, अंत कालमें कालिका"॥

इसी वास्ते पुत्र उत्पत्तिसे माता, मैथुन भोग कर्मसे मेहरी पूजा लेनेको लक्ष्मी, भवानी, चंडी, देवी आदिक बनी हुई, और जीवोंका संहार करनेको महाकाली, काली, कालिका, ऐसे नाना नाम धराय, जीवोंको स्त्री दुःख बंधन दे रही है। और द्रव्यमें पंद्रह दोष हैं प्रमाण सुनोः-

श्लोक-'स्तेयं हिंसाऽनृतं दंभः, कामः क्रोधः स्मयो मदः। भेदोवैरमविश्वासः संस्पर्धाव्यसनानिच'

भागवत एकादश स्कंध।

देखो-चोरी, हिंसा, असत्य भाषण, दंभ, काम, क्रोध, अहंकार, धनमद, भेद, वैर, अविश्वास, मत्सर और व्यसन कहिये स्त्री विषय, द्यूत कहिये चौसर खेलना और मद्यपान, ऐसे द्रव्य प्राप्तिके कर्ममें प्राण हत्यादिक बहुत पाप हो रहे हैं। तैसे ही सूक्ष्म या झीनी माया 'अहं ब्रह्म' 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि अद्वैत ब्रह्म निरूपणमें पाप पुण्यके सकल जगत व्यवहार व्यापक रूपते आते हैं। और जड चैतन्य एकरूप जीव मानंदी करता है याते ब्रह्मज्ञान होनेमें अनंत दोष हैं। इसवास्ते ये स्थूल और सूक्ष्म कहिये मोटी और झीनी ऐसे मायाके मुख्य दोष निवृत्ति कर चैतन्य जीव शुद्ध स्वरूप, सबसे न्यारा, ऐसी न्याय दृष्टिरूप ज्ञान दृष्टि उघाडके देखे।

जैसे दूधमेंसे घृत तिलमेंसे तेल और जलका मोती हो उसमेंसे न्यारा हो जाता है तैसी जीवने जड देहकी आशा वासना सब छोड, ज्ञान मात्र जीवन रूपकी पूरी पारख कर निरहंकार स्थितिकी धारणा करके आपने चैतन्य समुझे पदपर स्थित होना । ऐसी यथार्थ बानी, गुरु मुख बानी वा सार निर्णय रूप बानी है। ऐसी निर्णय रूप सत्य समुझ वा पूरी पारख जो जीवके अंगमें प्रकाशित हुई तो, जड चैतन्य दृश्य अदृश्य, अनुमान कल्पना, भाव अभाव, पक्ष अपक्ष कसर खोट, आरम्भ परिणाम, न्याय अन्याय, शुद्ध अशुद्ध, मनुष्य और पशुबुद्धि आदिक सब प्रत्यक्ष दीखने लगता है। और जीव भ्रमरहित होके निजप्रकाश-रूप शुद्ध निर्मल हो जाता है । फिर ब्रह्म जगत्, जन्म मरण इत्यादि नाना दुःख वो जीव कभी भोगनेका नहीं । अब इसीपर और तुम्हारा क्या कहना है सो कहो ?

संन्यासी बोले:–वाहजी, बहुत अच्छाविचार हुवा । परंतु देखो, वेदमें अभिमान रहित, पंचकोशते न्यारा त्रिपुटी रहित सप्त ज्ञानभूमिकाके परे भागत्यागलक्षणासे विदहेमुक्त स्थिति एक अद्वैत आत्मा न्यारा सिद्ध किया है। आप जड चैतन्य मिश्रित एक अद्वैत आत्मा ठहराया है ऐसा कैसा कहते हो ! इसीका सत्य निर्णय किया है, सो आप समुझावोगे तब हमाराभी सब संशय दूर हो जावेगा।

न्यायीसाधु बोलेः-देखो संन्यासीजी, अभिमान रहित किस प्रकारसे कहा है सो सुनो । सब पंच विषयोंका पूर्णआनन्द मिला तो बडा सुख और न प्राप्त हुवा तो बडा दुःख मानके, विषय-कर्मसे अध्याससे अतृप्तिमें मरते हैं, सो स्थूल देहका विश्व अभिमान है । स्वर्ग, देवता, इन्द्रपद, राज्यपद, मन्त्र, यन्त्र, विद्यादिक प्राप्तिमें बडा सुख और न प्राप्त हुई तो बडा दुःख मानेके वही कर्म साधनाकी वासनामें मरते हैं सो सूक्ष्म देहका तैजस अभिमान है । अष्ट सिद्धि नौ निधि षट्गुण ऐश्वर्य प्राप्तिमें बडा दुःख मानके नाशमान योगक्रियादि कर्ममें आशा रखके मरते हैं, सो कारण-देहका प्राज्ञ अभिमानी हैं । जगत् सब इन्द्रजालवत् और मैं तीनलोकका साक्षी ब्रह्म हूं, ऐसी स्थिति होनेमें बडा सुख मानके, सम दमादिक चतुष्टय साधनसंपन्न होनेके लिये पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु तैसी पूर्ण स्थिति न होनेसे आखिर सर्वत्र व्यापक ब्रह्म बनते, जन्ममरणादिक बडा दुःख सहते हैं सो महाकारण देहका प्रत्यगात्मा अभिमान है । स्थावर जंगम वा चर अचर सकल सृष्टिमें भरा हुवा एक अद्वैत आत्मा मैं हूं, ऐसी दशा होनेमें बडा सुख मान, 'तत्त्वमसि' महावाक्यका निर्णय कर, सब जगत व्यापक आत्मा बन, जड अजगरवत् वृत्ति धार. फिर जन्ममरणका बडा दुःख भोगते हैं, सो कैवल्य देहका निरंजन अभिमान है । धीरज, दया, शील, विचार, सत्य, संतोष, ऐसे शुद्ध गुण, प्राप्तिमें ईश्वरवत् बडा सुख मान

वैसेही गुण सदोदित अंगमें प्राप्ति होनेके निमित्त विवेक वैराग्यादिक साधन करते हैं। परन्तु वही शुद्ध गुणसे काम, क्रोधलोभादिक अशुद्ध गुण उत्पन्न होनेकी दुगदुगी रहिके, तैसी पूर्ण स्थितिकी धारणा न होनेसे फिर चौरासीका बडा दुःख भोगते हैं, सो मनुष्यदेहका तामस अभिमान है। ये छवों अभिमान वा अहंकारमें जडतत्त्वोंका सूक्ष्म अध्यास जीवका छूटताही नहीं। अब पंचकोशसे न्यारा होनेकी स्थिति सुनो। सृष्टिमें पंचविषयोंके अनेक कर्म करते हैं, सो अन्नमय कोश है। वायुरूप सूक्ष्म देवता प्राप्तिकी वासनासे केवल भावनारूप सगुण निर्गुण भक्ति और उपासनाके नाना कर्म करते हैं सो प्राणमय कोश है। मस्तक वा ब्रह्मांडमें प्रकाशरूप हीरामय ईश्वर है ऐसी मानन्दी करके उसी आशामें राजयोग हठयोगादिक नाना क्रिया करते हैं, सो मनोमय कोश है। सर्व साक्षी ब्रह्म अधिष्ठान मानंदी करते, उसी इच्छासे परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान साधना करते हैं, सो ज्ञानमय कोश है और स्थावर जंगम, कीट पतंग एकरूप आत्मा 'अहं ब्रह्मास्मि' सिद्ध करके, तत्त्वोंके आनंदमें गाफिल हो, जागृतमेंही सब देहका भान पिशाचवत् दशा धारण कर भूल जाना, सो विज्ञानमय कोश है। ताते पंचकोशमें जडका सूक्ष्म अध्यास जीवका बनाही रहता है। अब त्रिपुटी रहित धारणा सुनो, ध्याता, ध्यान, और ध्येय अर्थात् स्थूल सूक्ष्म और कारण, ये

जीवकी त्रिपुटी नाश करके, तुर्य महाकारणरूप ईश्वर बन जाते हैं। फिर वहां ज्ञेय कहिये विराट, हिरण्यगर्भ और अव्याकृति ये ईश्वरके तीन देह नाश करते हैं। उपरांत ज्ञाता कहिये ईश्वर और ज्ञान कहिये मूलप्रकृति तुर्य दोनों एकत्र मिलाय, अखंड ब्रह्म दशाको प्राप्त होते हैं। परन्तु ईश्वर माया, जड चैतन्य, ज्ञान और अज्ञान, ये छः कार्यमें कारण ब्रह्म, पूर्ण भरा है ही। कार्यका नाश किया परन्तु कारण ब्रह्म, जड बीज और कर्त्ता चैतन्य जीव एकरूप ठहराया है। देखो सुन्दरदासजी कहे हैंः—

**दोहा—"एकब्रह्म कारन जगत, कारज है बहुभांति।**
**चतुर्खानि विस्तार यह, लख चौरासी जाति॥"**

ज्ञान समुद्र

और फिर ऐसाही कहा है:—

**दोहा—अहंपरमआनंदमय, अहंज्योति निजसोइ।**
**ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया, दूजा रहा न कोइ॥'**
**"ज्ञेय ज्ञाता नहिं ज्ञान तहां, ध्येय ध्याता नहिं**
**ध्यान, कहनहार सुंदर नहीं, यह अद्वैत बखान॥"**

सुन्दरदास काव्य

याहीते देखो, त्रिपुटी नाश करनेमें जीवकी जड अध्यासकी भावना दुगदुगी बनीही रही, क्योंकि, जगत ब्रह्म एकमें साने हैं। अब सप्त ज्ञानभूमिकाके परेकी विदेहमुक्त स्थिति

सुनो । वैराग्य पूर्वक सत् शास्त्र और संतजनोंके संगतिकी इच्छा सो शुभ इच्छा सत् शास्त्र देख और सत्संग कर, सत्य असत्यका विचार करे, सो शुभ विचारणा; शुभ इच्छासहित तत्त्वोंका अभ्यास और इंद्रियोंको विषयोंसे वैराग्य, सो तनुमानसा; ये तीनों भूमिका जगतके जागृत अवस्थामें है । तीनों भूमिकाका अभ्यास कर, श्रवण, मनन, निदिध्याससे ब्रह्म अनुभवमें स्थित होना, सो सत्त्वापत्ती चौथी भूमिका तत्त्वज्ञानियोंकी हैं । ऐसे संयमसे ये चारों भूमिकाओंमें विशेष मन लगायके शुद्ध होना सो असंशक्ति, दृश्यका विस्मरण और अन्तरमें नाना पदार्थोंसे तुच्छ भाव सो पदार्थ भावनी; ये दोनों पांचवीं और छठी भूमिकाका जीवन्मुक्त दशा सिद्ध किये हैं । और चिरकालपर्यंत छठी भूमिकाका अभ्यास करके स्वरूप दृढतामें छवों भूमिकाकी एकता करके सबका सुषुप्तिवत् अभाव होवे और इंद्रियोंके क्या व्यवहार होते हैं इनकीभी विस्मृति होवै; सो सातई भूमिका तुर्याधिदेहमुक्तस्थितकी धारणा मातन्दी किये हैं । देखो निश्चलदासजी कहे हैं:

सवैयाछंद–"निज बिषयनमें इंद्री बर्तैं, तिनते मेरो
नाहीं संग ॥ त्यागहु विषय कि भोगहु
इंद्रिय, मोको लगे न रंचक रंग" ॥

विचारसागर पंचम तरङ्ग ।

और सुन्दरदासजी कहे हैं:-

छंद—" इंद्रिनको ज्ञान जाको सो तो है पशुसमान ।
ज्ञानीको सुंदर सब ब्रह्मको विलास है" ॥

सुंदर विलास ।

देखो, झाड लगाया आंबका कहिये ज्ञानका, आगे झाड उत्पन्न भया कंटकरूप बबूलका अर्थात् सुषुप्तिवत् गाफिली वा महा अज्ञानस्थिति, और फल लगे कडुवा वृन्दावन समान काहिये भ्रमिस्थदशा वा पशुदशाकी धारणा क्या आश्चर्य है? तुमहीं परखो भला, चैतन्यकी सत्ता विना कैसे इंद्रिय व्यवहार होते होंगे? केवल शिलावत् वा मुरदावत् जड तो नहीं भये? मद्यपीकी नाईं चाहे व्यवहार होते होयँ ऐसा कहना तो कौनसी शुद्धता रही? देखो सप्त ज्ञानभूमिकाके परे विदेहमुक्त स्थितिमें सब जगत व्यापक, जड चैतन्य एकरूप आत्मा आनन्दी किये हैं, याते सूक्ष्म जडका अध्याय बनाही रहा। इसी वास्ते अभिमान, पंचकोश त्रिपुटी, सप्त ज्ञानभूमिका आदिक केवल अध्यारोपी अपवाद है, अर्थात् अविद्यारूप अज्ञान बखेडा नाना शब्दोंका कल्ला, कोलाहाल हो रहा है। भागत्याग लक्षणासे जीव जड अध्याससे न्यारा हुवा नहीं। शंकराचार्यादिक अद्वैत ब्रह्मवादी मध्वाचार्यादिक जीव न्यारा और ब्रह्म न्यारा सिद्धि किये हुये द्वैत वादी, और रामानुज, दयानंद सरस्वती आदिक विशिष्टाद्वैतवादी, नाम कुछ अज्ञान और कुछ ज्ञान मिश्रित, अर्थात् ब्रह्म, जीव

और प्रकृति ये तीनही अनादि माननेवाले हुये। ऐसे सब ब्रह्मज्ञानी जड देहके भासको अपना स्वरूप सिद्ध करते हैं। याहीते ये सब नास्तिक वेदादिक मतवादी भये हैं। जीव मुख्य बिंब, सुख दुःख अवस्थादिक सबका जनैया जागृतरूप, उसीको मिथ्या, आभास वा प्रतिबिंब, श्वास वा प्राणवायु ठहराये हैं। तो ये सब बडे बडे ज्ञानी किसको उपदेश करके शुद्ध करते हैं? ब्रह्म तो प्रकाशरूप और उसीका अंश जीव मिथ्या आभास जो सांचही है, तो सत्संग करनेका कारण क्या? और नाना साधना काहेको कर रहे हैं? देखो तुलसी दासजी कहे हैं:-

चौपाई-"मम मायासंभव संसारा॥
जीव चराचर विविधि प्रकारा"॥

रामायण बालकांड

तो ब्रह्म सबसे शुद्ध होके, अनेक जीवरूप मिथ्या भ्रम वही ब्रह्म अधिष्ठानमें उत्पन्न हो, चर अचरमें व्यापक हो गया है! तो ऐसा भ्रम होनेका कारण क्या? शुद्धमें कभी भूल रहती है? ताते सब कपोल बातैं गाल बजाना है? ये सबोंकी अंतरबाहर दृष्टि मूंद गई, और जड अंध सब ब्रह्मज्ञानी बने नहीं क्या? क्योंकि, इच्छारूप अध्यास 'एकोहं' आदि फुरना वा आदिभूल महाधाका सकल सृष्टिका अनादि बीजरूप सबका सूक्ष्म अध्यास बनाही रहा? देखो आत्माश्रय कहिये सब जगतको मूल आश्रय, अन्योन्याश्रय कहिये जड चैतन्यका परस्पर आश्रय, अतिव्याप्ति कहिये

सर्वत्रव्यापकता, चक्रिका कहिये 'रहघडी न्याय' जन्ममरणरूप कालचक्रका फेरा, और अनवस्था कहिये सृष्टिमें एकको एक उत्पन्न कर्ता मानना ऐसे पंच दोष परमात्मामें लेशमात्र नहीं हैं ऐसा सिद्ध किये हैं। परंतु सबका आदि कारण अधिष्ठान वा मूलरूप सब दोषोंका घर वा बीज परमात्माही बनके जीवोंको दुःख दे रहा है। याते कार्यरूप सृष्टिका नाश जो भी किया है, तो भी कारणरूप 'अहं ब्रह्म' भूल और उसीमें शामिल हुवा जीव इसीका निरुवारा हुवाही नहीं, सो सत्यन्यायी सद्गुरुके सत्संगद्वारा होना चाहिये; तबहीं सब भ्रांति मिटेगी। जीवमें मैं चैतन्य सब जड कर्तव्यको जानता हूं ऐसी समक्ष गहिके, स्त्री, पुत्र, धन, जगतके नाना कर्म मार्ग, उपासना, भक्ति, योग' ब्रह्मज्ञानसे अंतमें प्राप्त जड आत्मदशा, कैवल्य मुक्ति 'जल' तरंग न्याय' जग व्यापक मानी हुई अन्न वस्त्रादिक खान पान व्यवहार, इनकी सब वासना, आशा; इच्छा समूल नष्ट करना चाहिये। तैसेही विषय आनंद, योग आनंद प्रेम आनंद, अद्वैत विदेहानंद, शुद्ध गुण धारणाका आनंद इत्यादि सब आनंद नाममात्र न्यारे न्यारे परंतु कम ज्यादा प्रमाणसे सब तत्त्वोंकीही भास उत्पत्तिका मूल बीज है। याते छवो देहके सब विकार दूर बहाय, उनका अध्यासछोड देना। अनंतर धीरज, दया, शील, संतोष, विचार, विवेक, वैराग्य आदिक केवल देहशुद्धिके लिये ये सब शुद्ध गुण धारण करना। क्योंकि जैसी मिट्टीकी हंडिया और कांचकी हंडिया एक अशुद्ध एक शुद्ध,

परंतु दोनों मिट्टीकेही विकार हैं तैसेही शुद्ध अशुद्ध अथवा गुण अवगुण सब देह विकार हैं; अंतमें वेभी देहके साथ चले जावेंगे। याहीते काय, वाचा और मनसे गुरुभक्ति दृढ हृदयमें धारण कर, सब जीवोंपर समदृष्टि निर्वैर भावसे जगतमें वर्तना। और पीछे कहे हुए छवों देहके अभिमान गलित हो, एक चैतन्य जीवरूप पारखदृष्टि सब अवस्थामें एकरस बनाना चाहिये। तभी अभिमान, पंचकोश, त्रिपुटी, सप्तज्ञानभूमिका, ये सब जड भास टूटके जीवकी जीवन्मुक्त स्थिति होवेगी। भागत्याग लक्षणामें देह रहेतक भी और अपनी देहकी आसक्ति अंतर बाहर त्यागना, और सत्संग अंतर बाहर ग्रहण करना। उपरांत निरभिमान, कोमलता, गरीबीसे देह आचरण रखना। तबहीं जीव निर्मल, शुद्ध, स्वयंप्रकाशी, समुझरूप जीवन्मुक्त होवेगा। अब तुम्हारा और कुछ संशय बाकी रहा होय सो निधडक कहो ?

संन्यासी बोले:--अच्छा महाराज सुनो, मनुष्यदेह उत्पन्न होनेको भूल प्रथम है, अथवा चैतन्य जीवरूपकी यथार्थ समुझवा पूर्ण पारख बोधदाता सद्गुरु प्रथम है सो दया करके कहिये। क्योंकि कोई ज्ञानी ऐसा कहते हैं, सद्गुरु जगतके उद्धार हेतु अवतार लेके आते हैं, सो सांच मानना वा अनुमान है, इसीका सत्य विचार न्यायदृष्टिसे कृपा करके कहो। और ऐसा शुद्ध हुवा जीव चोला छूटे उपरांत कहां रहेगा ? इतनाही संशय हमारा बाकी है, सो दया करके समुझाइये महाराज।

न्यायीसाधु बोले:-संन्यासीजी आपने अच्छी बात पूछी, इसीका विचार प्रथम तुमहीं अपने दिलमें सोचो देखो, मनुष्यदेह लिये बिना किसीको आत्मज्ञान प्रगट हुवा है क्या ? याते ब्रह्मभूलसे बना हुवा मनुष्यदेह प्रथम है, और पीछेसे नाना प्रकारसे ज्ञान प्रगट हुये हैं । जगतमें सब जीव वासना, अज्ञान वा भूलसेही जन्म लेते हैं देखो, मनुष्य ज्ञानखानी है, याते नाना विद्या नानाकला नानामार्ग सब मनुष्योंने अपने ज्ञानकलासेही निकाले हैं । अब कोई एक विचक्षण निजस्वरूप खोजी, तीक्ष्ण बुद्धिके मनुष्यने सकल जगतके नाना मत मतांतर देख और कई एक सज्जनोंका सत्संग कर, अपने मूल उत्पत्तिको कारण ब्रह्मभूल निरुवारके निकार डारी, वही सत्यन्यायी देहधारी पूर्ण पारखी मूलमें सद्गुरु बने हैं वही कायावीर कबीर साहेब हैं ऐसा समझो । क्योंकि कायामें बीर स्वभाव अर्थात् शूरवीरवत सब जडदेहके नाना विकार, भावना. कल्पना, अनुमान, भास और सबोंका अध्यास तोडके, देह रहतेही जीवन्मुक्त अलग हो गया है, नाम जडदेहसे विरस हो गये हैं वा सबका अभाव हुवा है । और उनसेही जगतमें प्रकाशरूप ज्ञान कहिये जड चैतन्यका निबेरा और शुद्ध जीवरूप समुझमें स्थिति नाम एकरस चैतन्य जीवभावमें स्थिति ऐसा उपदेश वा बोध प्रगट हुवा है । याते धन्य वह सद्गुरु कबीर साहेब हैं कि, जिन्होंने सब जीवोंपर दयादृष्टिसे सत्य ज्ञानबोध कहिये पारखदृष्टि खोलके बताई है ।

सृष्टिमें नानामत मतांतरभी ऐसेही अपने अपने बुद्धि अनुसार बनायके, एक एक मतके महंत श्रेष्ठ वा आचार्य हुये हैं । परन्तु सबकी मजल सकल सृष्टिका अधिष्ठान ब्रह्मबीज वा महा आनंदरूप गाफिलीतक पहुंची है, आगे किसीकी गति चली नहीं अथवा कोई पार पाया नहीं । 'याहीते बटबीज न्याय' वही ब्रह्मरूप बीजसे बारबार जन्ममरणादिक दुःसह देहदुःख सब जीव भोग रहे हैं । खानीमें स्त्री और बानीमें ब्रह्म सिद्धांत इनका भारी पक्ष जगतमें हुवा है, सो किसीसे जल्दी नहीं छोडा जाता । अच्छा आगे सुनो, अब ऊपरकी कही हुई शुद्ध ज्ञान दृष्टि, वही गुरुदृष्टि दिव्यदृष्टि अथवा गुरुकृपा है । ऐसी गुरुकृपा जिस मुमुक्षु जीवपर हुई सो मनुष्य, देह और देहसे उत्पन्न होनेवाले सब विकारको अच्छे परखके, सदोदित वही गुरुदृष्टिसे सदा देहसे न्यारा जीव न्मुक्त रहता है याहीते जड तत्त्वोंकी कालिमा उसीकी सब झड जानेसे शुद्ध स्वयंप्रकाशी बनता है । फिर जन्म मरणादिक कोई दुःखकी कालिमा, मूल वा बीज 'भूने बीजवत्' उत्पत्तिका अंकुर इच्छा अध्यास नष्ट होनेसे अचल, अटल, न्याय तख्तपर पूर्ण स्थिति हो जाती

जो देह रहतेही अभी वह जीव शुद्ध प्रकाशरूप बना है, तो उसीका देह आजही छूटा जानना । अंतमें स्थूल देहरूप कवच वा म्यान छूटेपर तरवार माफिक शुद्ध प्रकाशरूप निज चैतन्य स्वरूपमें बना हैही । साधु अथवा गृहस्थ कोई मनुष्य होय जो ऐसी स्थिति धारण करेगा सो; और ऊपर कहे हुये न्याय

मूर्ति पारखी सद्गुरु कबीर साहेब ये दोनों देह भावसे न्यारे न्यारे देखनेमात्र है, परन्तु शुद्ध ज्ञान प्रकाशमें दोनों एकरूप समसमान हैं। ऐसी ज्ञानमें दो जीवोंकी एकता होती है और अज्ञानमें जीवोंका जन्म मरण प्रवाह छूटताही नहीं। जगतमें ज्ञानियोंकी चार प्रकारकी रहनी वा वर्तमान हैं। पूर्ण योगी महासिद्ध, सो स्वेच्छासे कहीं भी गमन करते हैं और शाप वा आशीश आदि शुभ अशुभ भक्त कर्मसे जीवको दुःख हो चाहे सुख हो, कुछ जानतेही नहीं, याते उनकी स्वेच्छा वर्तमान है। पूर्ण अनन्य भक्त लोग दूसरा ईश्वर अपनेसे न्यारा मानके, वही ईश्वर शुभ वा अशुभ कर्म हमसे करवाता है, ऐसा हृदयमें धारे हैं, ताते उन्हींकी परइच्छा वर्तमान है, और पूर्ण ब्रह्मदशा धारे हुये परमहंस ब्रह्मज्ञानी विधि निषेध सब कर्म छोड़ सकल जगत एक ब्रह्मरूप है ऐसी जडवृत्ति धारण कर, महा आनंदमें गाफिल धुंध हो भक्ष अभक्ष सेवन अथवा कोई जगनिंद्य कर्म करते हैं, याते उनकी अनिच्छा वर्तमान है। ये तीनों वर्तमानमें अपनेही जीवपर दया नहीं हुई, तो दूसरे पर क्या दया कर जन्म मरणसे मुक्त करेंगे ? और पारख प्रकाशरूप, अचल, पूर्ण चैतन्य जीवपदपर स्थिति किये हुये न्यायमूर्ति पारखी सद्गुरु कबीर साहेब हैं। सो शुद्ध गुण संयुत और सब जड देहसे उत्पन्न होनेवाले नाशमान जड पदार्थोंकी भावना छोड एक अपनेही जातिके सब जीत हैं ऐसी समदृष्टि रखके, सहज दयास्वभावसे न्याय नीतिका

सत्य उपदेश, जगतके सब मनुष्यरूप हंस जीवोंको करते हैं और कोई जीव पक्षरहित दीन गरीब स्थिति धारण करके, पारख प्रतापसे मुक्त हो जाते हैं। ऐसे पारखी वा न्यायमूर्ति सद्गुरु कबीर साहेबका निरास वर्तमान है। तो ऐसे जड नाशमान देह और जगत पदार्थोंकी सब भावना छोड, निरास वृत्तिसे चैतन्य जीवपदपर स्वप्रकाशरूप स्थिति जोकोई जीवकी भई है, सोई एक सच्चा मनुष्य है। सोई सद्गुरु, सोई कबीर साहेब रूप, सोई देवता, सोई मनुष्योंका, नायक सोई धनवान्, सोई पूरा है शूर है। ऐसे सद्गुरुके और संतोंके, जितने गुण वर्णन करना उतने थोडेही कर जानों।

विदूषक बोलाः-वाहजी न्यायीसाधु कबीररूप महाराज! आप धन्य धन्य हो! बलिहारी है आपके शुद्धज्ञानकी! अनंत जन्मका अथवा अनादि कालका अज्ञान, भूल, धोखा वा महा अंधियारा दूर कर, नित्य, चैतन्य, अविनाशी जीवको आप स्वयंप्रकाशी समुझरूप वा पारख प्रकाशरूप किये हो! अब तन, मन, धनादिक सब नाशमान पदार्थ आपने ऊपरसे फेंक दिये, अथवा प्रत्यक्ष मेरे अंगका चमडा निकाल, उसकी पनही आपके पांवमें डारी, तो भी आपके अनंत उपकार सारे जन्ममें उरिन होनेके नहीं क्योंकि आप अविनाशी पद दिये हो, सो ये नाशमान वस्तुवोंसे क्या उरिन होना है? तांते अब निरहंकार हो, आपकी और आप सरीखे स्थितिवारे संतोंकी अंतर बाहर दीनतासे सदा सेवाहि करना उचित है। और आगे कुछ अब बोला नहीं जाता। मैं

दीन गरीब आपको हाथ जोडके वारंवार बंदगी करता हूं। हे दयानिधि सद्गुरु कबीर साहेब अब मेरे अपराध क्षमा करो।

ऐसा विदूषक बोले उपरांत सब मिलके अंतमें बडे प्रेमभावसे सद्गुरु कबीर साहेबकी स्तुति गाने लगे।

शब्द

कबीरदेव पूरण पद पारख, कस वरणौं तुव कीर्ति हो ॥
कृपादृष्टि सबन प्रभु हेरो, वंदौं हढकर मूर्ति हो ॥ टेक ॥
विषयभोग सब जीव हिंसादिक, मायाजाल जीव बौरा हो ॥
कर्म उपासना भक्ति जोगादिक, ब्रह्मज्ञान भ्रम ठौरा हो ॥ १ ॥
चैतन्य जीवकी सब भांति तुम, कसर खोट खोय डारो हो ॥
अज्ञान झाई परदा खोलके, बंधन सब निरुवारो हो ॥ २ ॥
जन्ममरण चहुँ खानि उपाधी, वेद शास्त्र शब्द भेदा हो ॥
पारखदृष्टि दे खोलि बतावो, छेदो भारि भव खेदा हो ॥ ३ ॥
सहज दया प्रभु पारख प्रकाशी, प्रगट्यो निर्मल ज्ञाना हो ॥
अज्ञान भ्रम तजि जीव भये हैं, स्वयंप्रकाश बलवाना हो ॥ ४ ॥
काशीदास है हीन दीन बहु, एक परख प्रभु आशा हो ॥
साहेब गुरु मम हृदय विराजो, झूठा काल तमाशा हो ॥ ५ ॥

ऐसी स्तुति कहकर सद्गुरु, कबीर साहेबको धन्यवाद दे वह सब चित्रपटके अंदर चले गये और चित्रपट गिराया।

इति परमार्थ ज्ञान संवाद राजनीति धर्म ग्रंथ समाप्त

---

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष: श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS